समकालीन महिला कहानीकारों की कहानियों का विश्लेषणात्मक अध्ययन

SAMAKALEEN MAHILA KAHANIKAROM KI KAHANIYOM KA VISHLESHANATMAK ADHYAYAN

Thesis

Submitted to

COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY

For the Degree of

DOCTOR OF PHILOSOPHY

In

Hindi

Under the faculty of Humanities

By

प्रीति वी.एस.

PREETHI V.S.

DEPARTMENT OF HINDI
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
KOCHI - 682 022

JUNE 2009

DEPARTMENT OF HINDI
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
COCHIN - 682 022, KERALA, INDIA

Prof. (Dr.) A. ARAVINDAKSHAN
Dean, Faculty of Humanities
Cochin University of Science and Technology

Phone: (Off) 0484-2575954
(Res) 0484-2424004
Mobile: 9447667313

Certificate

This is to certify that the research work presented in the thesis entitled **"Samakaleen Mahila Kahanikarom Ki Kahaniyom Ka Vishleshanatmak Adhyayan"** is an authentic record of research work carried out by Preethi V.S. under my supervision at the Department of Hindi, Cochin University of Science and Technology, in partial fullfillment of the requirements for the degree of DOCTOR OF PHILOSOPHY in Hindi and that no part thereof has been included for the award of any other degree.

Dr. A. Aravindakshan
Professor
Supervising Guide

Place :
Date :

Declaration

I hereby declare that the thesis entitled **"Samakaleen Mahila Kahanikarom Ki Kahaniyom Ka Vishleshanatmak Adhyayan"** is the bonafide report of the original work carried out by me under the supervision of Dr. A. Aravindakshan at the Department of Hindi, Cochin University of Science and Technology and no part there of has been included in any other thesis submitted previously for the award of any degree.

Place :

Date :

Preethi V.S.

प्राक्कथन

वर्तमान समाज का अन्तर्विरोध साहित्य का विषय बनता है। कारण यह है कि साहित्य सामाजिक अपसंस्कृति पर अंकुश लगाता है। स्त्री का यथार्थ इसी प्रकरण में विवेच्य बन जाता है। अपसंस्कृति द्वारा संचालित सत्ता के अधीन स्त्री-यथार्थ पीड़ित है। यह पुरुषसत्ता के द्वारा निर्मित अपसंस्कृति है। उसका एक लम्बा इतिहास है। उस इतिहास के विभिन्न पक्षों का आकलन समकालीन कहानी में हुआ है। उसे कलात्मक रूप देने के दो तरीके हैं। एक में ज्वलंत अनुभवों को प्रमुखता दी जाती है तो दूसरे में अवस्थाओं के तादात्म्य को। स्त्री-लेखन और पुरुष-लेखन की भिन्नता का आधार इस दृष्टि से तय होती है। समकालीन कहानी के स्त्री पक्षों को आंकने में यह दृष्टि बहुत ही उपयोगी है।

समकालीन कहानी के स्त्री पक्ष को मूर्त करने में कई महिला कहानीकारों का महत्वपूर्ण योगदान है। यह बात सही है कि पुरुष रचनाकार भी इसमें अपना सहयोग देते हैं। लेकिन स्त्री जीवन का यथार्थ महिला कहानीकारों की कहानियों में अधिक तीव्रता के साथ संप्रेषित होता है। इसमें पुरुष सत्ता के अधीन में नष्ट होनेवाली स्त्री है। स्त्रियों को महिला-कहानीकार सहानुभूति से नहीं देखती बल्कि सह अस्तित्व की दृष्टि के परिप्रेक्ष्य में देखती है। सह अस्तित्व की चेतना समकालीन

महिला-कहानी-लेखन की एक खासियत है। इस खासियत के व्यापक परिप्रेक्ष्य को परखने का प्रयास इस शोध प्रबन्ध में किया गया है। शोध प्रबन्ध का विषय है - "समकालीन महिला कहानीकारों की कहानियों का विश्लेषणात्मक अध्ययन।" इस शोध प्रबंध के पाँच अध्याय हैं।

पहला अध्याय है "आधुनिक कहानी का महिला लेखन सन्दर्भ।" समकालीन कहानी का महिला लेखन सन्दर्भ अपने आप में एक नया प्रयास नहीं है। इसकी एक लम्बी परंपरा है। बंगमहिला से लेकर कई लेखिकाओं ने इस सन्दर्भ में अपनी रचनात्मकता का परिचय दिया है। इसकी एक अगली कड़ी के रूप में आधुनिक कहानी के महिला-लेखन का विकास हुआ है। आधुनिक कहानी का महिला लेखन समकालीन कहानी के महिला लेखन की तुलना में उतना सशक्त या उतना दिशागामी नहीं है तो भी उसकी अपनी विशेषता है। समकालीन कहानी के महिला-लेखन के बीज को अंकुरित करने में आधुनिक कहानी के महिला-लेखन का महत्वपूर्ण योगदान है। प्रस्तुत अध्याय में इस पूर्व पीठिका के मूल्यांकन का प्रयास किया गया है।

दूसरा अध्याय है "समकालीन कहानी का महिला लेखन सन्दर्भ।" समकालीन कहानी में अधिकांश लेखिकाओं ने स्त्री के यथार्थ को व्यापक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने का प्रायास किया है। उन प्रमुख लेखिकाओं के लेखन से गुज़रने का कार्य इसमें हुआ है। इन लेखिकाओं की दक्षता सिर्फ स्त्री केन्द्रित यथार्थों को स्त्री पक्ष के सीमित दायरे में रखकर आंकने में

नहीं है बल्कि सामाजिक यथार्थ के बहुलार्थी सन्दर्भों में आंकने का प्रयास उन्होंने किया है। स्त्री पक्षों को विस्तृत पटल में उतारने में यह सहायक है। समकालीन महिला कहानीकारों की स्त्रीपक्षीय-दृष्टि के रचनात्मक क्षितिज को प्रस्तुत करने का प्रयास इस अध्याय में किया गया है।

तीसरा अध्याय है - "समकालीन महिला कहानीकारों की कहानियों में पुरुषाधिष्ठित मूल्यों के वर्चस्व और अधीनस्थ स्त्री।" महिला कहानीकारों की कहानियाँ पुरुषाधिष्ठित मूल्यों के विपक्ष में रची गयीं हैं। पुरुषाधिष्ठित मूल्य और उससे जन्मे अर्थ केन्द्रित मूल्यों के अधीन नष्ट होनेवाला स्त्री जीवन इन कहानियों का यथार्थ है। यह अधिकार केन्द्रित एक समाज का सत्य है। पुरुष सत्ता द्वारा बहिष्कृत एवं हाशियीकृत स्त्री यथार्थ के प्रकरणों के विश्लेषण का प्रयास इस अध्याय में किया गया है।

चौथा अध्याय है "समकालीन महिला कहानीकारों की कहानियों में उभरती स्त्री का संघर्षशील स्वरूप"। समकालीन महिला कहानीकारों की कहानियों की एक खूबी यह है कि उसमें स्त्री प्रतिरोध बुलंद है। यह प्रतिरोध सिर्फ पुरुष का विरोध मात्र नहीं है बल्कि अधिकार केन्द्रित एक अपसंस्कृति का विरोध है। इसको सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में परखने तथा उसकी गहराइयों को भाँपने का प्रयास प्रस्तुत अध्याय में किया गया है।

पाँचवाँ अध्याय है "समकालीन महिला कहानीकारों की कहानियों की सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रासंगिकता।" समकालीन महिला कहानीकारों

की कहानियों की प्रासंगिकता स्त्री जीवन और स्त्री लेखन से भिन्न नहीं है। महिला-लेखन को सरलीकृत करके देखने की प्रवृत्ति वर्तमान समाज में विद्यमान है। महिला लेखन का यह सरलीकरण स्त्रीजीवन का सरलीकरण नहीं है। पुरुषाधिष्ठित मूल्यों पर केन्द्रित आलोचना के प्रतिमानों के संदर्भ में कई वरिष्ठ आलोचकों ने महिला लेखन को हल्के ढ़ग से देखने का प्रयास किया है। लेखन का यह लिंग विभाजन जब एक मूल्यसंरक्षण के निमित बनता है तो समस्या गंभीर बन जाती है। समकालीन महिला लेखन एक लिंगकेन्द्रत लेखन ही है। लेकिन यह मूल्यसंरक्षण पर आधारित नहीं है बल्कि समतामूलक मूल्यों के निर्माण के सक्रिय प्रयास का परिणाम है। समकालीन कहानी की लेखिकाओं की कहानियों में इस मूल्य निर्माण का प्रतिफलन हम देख सकते हैं। इस मूल्यनिर्माण के कई पक्षों को विवेचित करने का प्रयास इसमें किया गया है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के आदरणीय गुरुवर प्रो. (डॉ.) ए. अरविन्दाक्षन जी के निर्देशन में संपन्न हुआ। उन्होंने ही मुझे कहानी पर शोध करने के काबिल बनाया है। उनके बहुमूल्य सुझावों तथा प्रेरणा वर्द्धक निर्देशन से ही यह अध्ययन पूर्ण हो पाया है। उनके प्रति मैं सदैव आभारी रहूँगी।

मेरी डॉक्टरल कमिटि के विषय विशेषज्ञ डॉ. आर. शशिधरन के प्रति यहाँ कृतज्ञता ज्ञापित करना मैं अपना कर्तव्य समझती हूँ। विभाग के सभी अध्यापकों के सुझाव एवं सहयोग के लिए मैं उनके प्रति कृतज्ञ हूँ।

विभाग एवं छात्रावास के मेरी प्रिय मित्रों को भी मैं इस समय याद करती हूँ, उनके स्नेह, प्रोत्साहन एवं सुझाव के लिए मैं उन सब से विशेष आभारी हूँ। श्रीकला, जिषा, षीना, अनिता, जूलिया, टीना, सौम्या, मेर्ली, सीमा, श्रीजा, बिन्दु, माया, विजि, प्रीता, मंजु, रश्मि, सन्ध्या, प्रिया, राजेश्वरी, बीना, निम्मी, लौली, रम्या अजय, रम्या सीसर, सजिता, जिषा वी.के, सिनि, जिनि, इंदु, राजन, जोइस, प्रदीप, राजगोपाल, अनु और अन्य सभी मित्रों से मैं अपना स्नेह प्रकट करती हूँ।

हिन्दी विभाग के पुस्तकालय एवं सेन्ट्रल लैब्रेरी के कर्मचारियों के प्रति भी मैं अपना आभार प्रकट करती हूँ।

मेरे हर कदम पर प्रार्थना और प्रोत्साहन के द्वारा मेरे साथ देनेवाले मां-बाप और भाई-बहनों से मैं सर्वथा कृतज्ञ हुँ। मुझमें आत्मविश्वास भरकर आगे बढने के लिए धैर्य देनेवाले मेरे मंगेतर पीयूष से विशेष रूप से आभार प्रकट करती हूँ।

पुनः एक बार उन सभी महानुभावों, मित्रों, सहृदयों को मैं आभार प्रकट करती हूँ, जिनके प्रत्यक्ष व परोक्ष सहयोग ने मेरे कर्मपथ को सुगम बनाया है। अंत में सर्वोपरी मैं उस सर्वेश्वर के प्रति आभारी हूँ, जिनकी कृपा से यह काम सही वक्त पर पूरा हुआ।

प्रीति. वि.एस.

विषयसूची

अध्याय : एक 1 - 46

आधुनिक कहानी का महिला-लेखन सन्दर्भ

आधुनिक कहानी में प्रतिबिम्बित आधुनिक समाज

आधुनिक समाज में स्त्री की उपस्थिति

स्त्री की उपस्थिति का पारंपरिक रूप

परंपरा का विरोधी रूप

आधुनिक हिन्दी कहानी की स्त्री की उपस्थिति की प्रासंगिकता

अध्याय : दो 47 - 78

समकालीन कहानी का महिला-लेखन सन्दर्भ

समकालीन कहानी का महिला-लेखन

समकालीन महिला-लेखन का विषय परिदृश्य

समकालीन महिला कहानीकारों की प्रतिक्रियाएँ

अध्याय : तीन 79 - 110

समकालीन महिला कहानीकारों की कहानियों में पुरुषाधिष्ठित मूल्यों के वर्चस्व और अधीनस्थ स्त्री

पुरुषाधिष्ठित मूल्य

पुरुषाधिष्ठित मूल्य और अधिकार

अधिकार और स्त्री

अधिकार से बहिष्कृत स्त्री

अर्थ और स्त्री

अर्थ से बहिष्कृत स्त्री

अध्याय : चार 111 - 138

समकालीन महिला कहानीकारों की कहानियों में उभरती स्त्री का संघर्षशील स्वरूप

स्त्री संघर्ष का प्रभाव

स्त्री संघर्ष का सामाजिक परिप्रेक्ष्य

स्त्री संघर्ष का सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य

अध्याय : पाँच 139 - 163

समकालीन महिला कहानीकारों की कहानियों की सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रासंगिकता

स्त्री का केन्द्र में आगमन

स्त्री केन्द्रित कहानियों पर आलोचकीय प्रतिक्रियाएँ

स्त्री-स्वत्व का अन्वेषण

स्त्री विकल्प की वास्तविकताएँ

सामाजिक यथार्थ का सरलीकरण और उसका प्रतिरोध

स्त्री की संघर्ष के माध्यम से अस्मिता की पहचान

उपसंहार 164 - 169

संदर्भ ग्रन्थ सूची 170 - 181

❖❖❖

अध्याय : एक

आधुनिक कहानी का महिला-लेखन सन्दर्भ

विश्व की हर भाषा में आज महिला-लेखन प्रखर है। लेकिन ऐसा एक समय रहा जब महिलाएं रचना के क्षेत्र में अनुपस्थित थीं। अतः आज जो प्रखर लेखन चल रहा है इसके पूर्व की स्थिति का अवलोकन अनिवार्य है। आधुनिक कहे जाने के बाद भी महिलाओं की रचना में उपस्थिति नगण्य रही। यही एक प्रमुख प्रश्न है।

हिन्दी कथा साहित्य का प्रारंभ भारतेन्दु युग में हुआ, किन्तु महिला कथाकारों ने इस क्षेत्र में अपनी प्रतिभा का अपेक्षाकृत विलंब से परिचय दिया। उन्नीसवीं शताब्दी के समाज में स्त्री उत्थान और जागृति का कार्य तेज़ी से आरंभ हुआ। ऐसे समय में शताब्दियों पश्चात् स्त्री ने अपने अन्दर बौद्धिक चेतना और जागृति का अनुभव किया। उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी का इतिहास एक क्रान्तिकारी युग का इतिहास है। पाश्चात्य सभ्यता, संस्कृति, आधुनिक शिक्षा पद्धति ने भारतीय जन-जीवन में आमूल परिवर्तन कर दिया था। इसका मूलकेन्द्र स्त्री थी। स्त्री जागरण की गूँज ने उसे अपने स्वत्व को समझने पर बाध्य किया। भारतीय नव-जागरण की कई अन्य महत्वपूर्ण उपलब्धियों में एक उल्लेखनीय उपलब्धि यह रही है कि समाज में स्त्री की रचनात्मक अस्मिता की नई पहचान शुरू हुई। जीवन के हर क्षेत्र

की तरह साहित्य के क्षेत्र में भी ऐसी कई महिलाओं के नाम उभरे जिन्होंने साहित्य जगत पर पुरुषों के एकाधिकार को चुनौती देते हुए साहित्य के विकास की मुख्य-धारा के साथ जुड़कर अपनी रचनात्मक दृष्टि को विकसित किया। सुभद्राकुमारी चौहान और महादेवी वर्मा के नाम इस सन्दर्भ में विशेष उल्लेखनीय हैं जिन्होंने सामाजिक जागरण के गीत गाये और स्त्री को उद्‌बोधित किया। स्त्री की सर्जनात्मक प्रतिभा का विकास उसकी सामाजिक अवस्था पर निर्भर रहती है। ज्यों-ज्यों समाज में स्त्री-शिक्षा का प्रसार होता गया, त्यों-त्यों स्त्री की साहित्यिक रुचि भी विकसित होती गयी। काव्य के समान कहानी के क्षेत्र में भी स्त्री का ध्यान जीवन की विविधता की ओर गया। कहानी के क्षेत्र में महिला-लेखन की शुरुआत बंगमहिला से मानी जाती है।

महिला-लेखन की प्रारंभिक दशा के बारे में एक अभिमत इस प्रकार है - 'हिन्दी कहानी के विकास क्रम के प्रथम दौर (1900-1915) तक की कथा लेखिकाओं में एकमात्र कथा लेखिका बंगमहिला ही है। वस्तुतः पाश्चात्य संस्कृति और साहित्य ने सर्व प्रथम बंगाल को प्रभावित किया था। इसीसे साहित्य जगत की जागरूकता भी पहले वहाँ की महिलाओं में आयी। वैसे राजनीति में भी पहले बंगाल की स्त्रियों ने ही भाग लिया। 1915 ई. के बाद हुए 'बंग-भंग' आन्दोलन में तो पुरुषों के बराबर ही महिलाओं ने भी हिस्सेदारी की। ...दूसरे दौर के प्रारंभ में ही अनेक लेखिकाएँ उभरकर आयीं जिन्होंने भिन्न-

भिन्न सामाजिक समस्याओं से जुटकर कहानियाँ लिखीं, फिर भी तत्कालीन विषम माहौल में इन लेखिकाओं की दृष्टि मुख्य रूप से अशिक्षा, पर्दा-प्रदा, बाल-विवाह, आर्थिक परतन्त्रता, विधवा-विवाह जैसी पारिवारिक समस्याओं पर ही टिकी। इन लेखिकाओं में श्रीमती जानकीदेवी, श्रीमती ठकुरानी शिवमोहिनी, कुन्तीदेवी, सुभद्रादेवी, मित्र महिला आदि अनेक लेखिकाएँ और इनकी कहानियाँ हैं।"[1] समाज में संकट की कमी नहीं थी। लेकिन शिक्षाप्राप्त एक नव समाज विकसित हो रहा था। फिर पूर्व प्रेमचंद युग में रंग महिला के अलावा कोई विकासशील नाम नहीं आ रहा है।

हिन्दी की पहली कहानी संबन्धी विवाद में बंगमहिला कृत 'दुलाईवाली' भी है। कुछ आलोचक इसे हिन्दी की प्रथम कहानी के रूप में मानने के पक्ष में हैं। "हिन्दी की पहली आधुनिक कहानी एक स्त्री ने लिखी। उसका नाम राजेन्द्र बाला घोष था। कहानी के इतिहास में वह बंग महिला नाम से प्रसिद्ध हुई।"[2] 'बंगमहिला' उपनाम से उनके जन्मदेश का पता चलता है। उन्होंने अपनी लेखनी पहले बंगला में चलायी। साथ ही कई बंगला कहानियों का हिन्दी अनुवाद भी किया जैसे, 'राई से पर्वत' 'कुंभ में छोटी बहू', 'दान-प्रतिदान', 'मुरला',

---

1. डॉ. रामकली सराफ - समकालीन हिन्दी कथा लेखिकाएँ (1989) (भूमिका से) पृ. 2
2. सं विभूतिनारायण राय - कथा साहित्य के सौ बरस - अर्चना वर्मा - बीसवीं सदी की हिन्दी कहानी का स्त्री अध्याय (लेख) (2001) - पृ. 182

'हालिया', 'मन की दृढ़ता' आदि। दुलाईवाली के अतिरिक्त अन्य मौलिक रचनाएँ है - 'भाई-बहन' और 'हृदय परीक्षा'। इनमें 'दुलाईवाली' और 'हृदयपरीक्षा' ये दोनों हास्यप्रधान कहानियाँ हैं।

बंग महिला की 'दुलाईवाली' कहानी के साथ हिन्दी कहानी में महिला कथाकारों की परंपरा का प्रारंभ हुआ और उस परंपरा के आगे की एक महत्वपूर्ण महिला कहानीकार है उषादेवी मित्रा। उसकी मातृभाषा बंगला है। उन्हें साहित्यिक सृजन की क्षमता विरासत् के रूप में प्राप्त थी। साथ ही रवीन्द्रनाथ ठाकुर का प्रभाव भी उनपर पड़ा था। आकस्मिक रूप में ही उनकी रुचि हिन्दी की ओर बढ़ी। इसके बारे में वे खुद लिखती हैं - "बीमारी की दशा में मेरे हिन्दी भाषी मित्र मुझे 'चन्द्रकान्ता' आदि उपन्यास तथा कहानियाँ सुनाया करते थे। मुझे लगा कि हिन्दी साहित्य अभी शिशु अवस्था में है तथा शब्दकोश क्षुद्र है। एक दिन मैथिलीशरण गुप्त का 'साकेत' सुनाया। मैं प्रभावित हो उठी कि हिन्दी साहित्य में भी कुछ है, खोज, सूक्ष्मदृष्टि भी है। ....चुंबक की नाईं इस 'साकेत' ने मुझे प्रभावित कर लिया।"[1] 'साकेत' से प्रभावित होकर उन्होंने हिन्दी में लिखना शुरू किया। प्रेमचन्द के प्रोत्साहन भी उन्हें मिला। फलस्वरूप उनकी प्रथम कहानी 'मातृत्व' हंस में छपी। कहानी लेखन के साथ-साथ कई औपन्यासिक

---

1. साहित्य अमृत (पत्रिका) (जनवरी 2003) - पृ. 37

रचनाएँ भी उनकी तूलिका से निकलीं। 'वचन का मोल', 'पिता', 'जीवन की मुस्कान', 'पथचारी', 'सोहिनी','नष्टनीड़' आदि। 'सम्मोहिता' नाम से बंगला से अनूदित एक उपन्यास भी है। उनके कहानी- संग्रहों में 'रात की रानी', 'नीम चमेली', 'महावर', 'आँधी के छन्द', 'सांध्य पूरवी', 'मेघ मल्लार', 'रागिनी' आदि आते हैं। सांसारिक जीवन के यथार्थ अंकन उनके कथा साहित्य की विशिष्टता थी। परिवार और स्त्री को ही उन्होंने अपनी कहानियों का केन्द्र बनाया। स्त्री जीवन की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं की अभिव्यक्ति उनकी कहानियों में मिलती है। उषादेवी मित्रा के लेखन की अपनी शैली भी रही है। जीवन की वैविध्यमय अभिव्यक्ति उनकी रचनाओं को रोचक बनाती है। आम जनता के जीवन की विषमताओं एवं जीवन रीतियों को ही उन्होंने प्रमुखता दी है।

आधुनिक हिन्दी कहानी का विकास प्रसाद और प्रेमचन्द से आरंभ होता है। इस क्षेत्र में प्रेमचन्द तथा प्रसाद ने दो भिन्न प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व किया। कालान्तर में हिन्दी कहानी में विकसित तकरीबन सभी प्रवृत्तियों के स्रोत इनमें लक्षित होते हैं। इन दोनों ने तत्कालीन लेखकों को भी प्रभावित किया। उनसे प्रभावित होकर उस समय कहानी क्षेत्र में अनेक प्रतिभा संपन्न कहानीकारों ने लेखनी चलायी और उन्होंने कहानी कला को परिष्कृत भी किया।

कहानी कला को मानव जीवन के खुले चित्र के रूप में प्रस्तुत करके साहित्य की विधाओं को महनीय बनानेवाले मुंशी प्रेमचन्द की पत्नी शिवरानी देवी महिला-लेखन की श्रेष्ठ हस्ताक्षर है। उनकी रचनाओं के केन्द्र में स्त्री है। बाल विवाह, दहेज प्रथा, वैधव्य आदि को लेकर लेखिका ने स्त्री की विषम स्थितियों की अभिव्यक्ति की है। स्त्री की ओर समाज में एक संवेदनात्मक दृष्टिकोण विकसित कराने का प्रयास लेखिका ने किया है। उस समय स्त्री को अपनी शोचनीय स्थिति से जगाने के लिए यह आवश्यक थी। "उनकी पहली कहानी 'साहस' 1927 में चाँद में प्रकाशित हुई।"[1] उनकी अधिकांश रचनाओं में के मूल में स्त्री की वैयक्तिक समस्याएँ ही हैं, साथ ही उनका अपना दृष्टिकोण एवं विचार-विमर्श भी मौजूद है। 'कौमुदी', 'नारी हृदय', आदि उनके श्रेष्ठ कहानी संकलन हैं।

सत्यवती मल्लिक प्रतिबद्ध लेखिका है। समाज की समस्याओं को उन्होंने अपनी कहानियों के द्वारा व्यक्त किया है। प्रगतिशील विचारधाराओं का प्रभाव उनकी कहानियों में देखने को मिलता है। बेकारी की समस्या को लेकर लिखी गयी उनकी कहानी है 'बेकारी'। पात्र सृष्टि में उन्हें बच्चे अधिक पसन्द रहे। पात्रों का मनोवैज्ञानिक चित्रण भी उनकी खूबी है। बाल मनोविज्ञान की दृष्टि से लिखी गयी

---

1. सं. विभूतिनारायणराय - कथा साहित्य के सौ बरस - अर्चना वर्मा - बीसवीं सदी की हिन्दी कहानी का स्त्री-अध्याय (लेख) (2001) - पृ. 184

रोचक कहानियाँ हैं - 'भाई-बहन', 'माली की लड़की', 'दो फूल' आदि। प्रगतिशील सामाजिक यथार्थ का अंकन 'एक सन्ध्या' नामक कहानी में हुआ है। उनकी शैली काव्यात्मक थी। यथार्थ की पुट एवं विषय की विविधता के कारण उनकी कहानियाँ रोचक सिद्ध हुई हैं। बाल मनोविज्ञान के चित्रण में लेखिका विशेष सफल रही है।

साहित्यिक क्षेत्र में पदार्पण करने के साथ-साथ स्वाधीनता संग्राम में भी लेखिकाओं ने अपनी भूमिका निभायी है। इसको प्रमाणित करती है कमला चौधरी। उन्हें राजनीति के क्षेत्र में भी विशेष रुचि थी। "सामाजिक मर्यादाओं में बन्दी आदर्श आचरण के लिए प्रतिबद्ध नायिका की हार्दिक व्यथा और मानसिक द्वन्द्व का चित्रण उनकी कहानियों की रूपरेखा है।"[1] 'उन्माद', 'यात्रा', 'पिकनिक' आदि संग्रहों की कहानियों में उन्होंने मात्र मनोवैज्ञानिक ढ़ग का विश्लेषण किया है। फिर भी पात्रों के अन्तर्मन का स्पष्ट चित्रण करने में वे सफल हुई हैं। समाज के विभिन्न पक्षों एवं उनसे संबन्धित समस्याओं का अंकन उनकी कहानियों में मिलता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व हमारे समाज में निम्न जाति के लोगों के ऊपर जो अन्याय हो रहा था, उसका सटीक वर्णन कमला चौधरी ने किया है। 'पागल', 'प्रायश्चित' आदि कहानियाँ इसके उदाहरण के रूप में ले सकते हैं। स्त्री जीवन की समस्याओं का

---

1. सं. विभूतिनारायणराय - कथा साहित्य के सौ बरस - अर्चना वर्मा - बीसवीं सदी की हिन्दी कहानी का स्त्री-अध्याय (लेख) (2001) - पृ. 187

अंकन भी उन्होंने बारीकी से किया है। विधवाओं की समस्याओं को व्यक्त करके पुनर्विवाह का समर्थन करने का कार्य उन्होंने किया है।

साहित्य को जन जागरण के सशक्त माध्यम के रूप में माननेवाली लेखिका है सुभद्रा कुमारी चौहान। कथा लेखिका की अपेक्षा उनकी ख्याति एक देशप्रेमी कवयित्री के रूप में अधिक है। उनकी कहानियों का मुख्य स्वर देश प्रेम का है। हिन्दु-मुस्लिम विद्वेष की समस्याओं को भी उन्होंने अपनी कहानियों में विषय बनाया है। राष्ट्रीय जागरण ही उनका लक्ष्य था। 'बिखरे मोती', 'उन्मादिनी', 'सीधे सादे चित्र' आदि उनके चर्चित कहानी-संग्रह हैं। उन्होंने अपनी कहानी कला के माध्यम से स्त्री स्वातंत्र्य एवं स्त्री समानाधिकार का विचार भी प्रकट किया है। विधवाओं की समस्याओं की ओर उन्होंने दृष्टि ड़ाली है। सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं को उनकी कहानियों में प्रमुखता मिली है। देशप्रेम पर लिखी गयी एक ओर लेखिका है तेजोरानी पाठक। प्रेमचन्द से प्रभावित होकर ही उन्होंने लिखना शुरू किया। प्रेमचन्द की रचनाओं में व्यक्त आदर्शोन्मुख यथार्थवाद से वे काफी प्रभावित हुईं। इसलिए उनकी कहानियों में भी आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का परिदृश्य ही मिलता है। असहयोग आन्दोलन तथा अन्य स्वतंत्रता आन्दोलनों से प्रभावित होकर उन्होंने कई कहानियाँ लिखी हैं। 'अंजली', 'एकादशी' आदि संग्रहों की कहानियाँ इसके उदाहरण हैं। इन कहानियों में उस समय की परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण मिलता है। 'छद्म का काँटा' शीर्षक

एक उपन्यास भी प्रकाशित है। उनकी सभी रचनाओं में मुख्य स्वर राष्ट्रप्रेम का ही है।

परंपरा के जंजीरों में बन्दी भारतीय स्त्री के मन की विक्षुब्धता को बिना हिचक के साथ प्रस्तुत करने का कार्य सुमित्रा कुमारी सिन्हा ने किया है। वे कहानीकार की अपेक्षा कवयित्री के रूप में अधिक प्रसिद्ध हैं। 'अंचल सुहाग' और 'वर्षागाँठ' उनके दो कथा संग्रह हैं। उनकी कहानियों में मुख्य विषय स्त्री है। स्त्री को घर की चारदीवारों की सीमा से बाहर निकालने का प्रयास उन्होंने किया है। सामाजिक समस्याओं को प्रमुखता देनेवाली लेखिका है चन्द्रकिरण सौनरेक्सा। गृहस्थ जीवन संबन्धी समस्याओं को उन्होंने प्रमुखता दी है। उनकी एकमात्र कहानी संग्रह 'आदमखोर' नाम से प्रकाशित है। इसमें कुल ग्यारह कहानियाँ संकलित हैं। इसके माध्यम से लेखिका ने सर्वहारा वर्ग एवं स्त्री जाति के प्रति अपनी संवेदनात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। हेमवती देवी अपनी लेखनी द्वारा निम्नवर्ग एवं मध्यवर्गी की विषमताओं को अभिव्यक्ति दी है। आम जनता का शोषण करनेवाले उच्चस्थानीय लोगों का पर्दाफाश करने के लिए उन्होंने कभी-कभी व्यंग्य शैली भी अपनायी है। नारी मुक्ति के लिए भी उन्होंने परिश्रम किया है। प्रगतिशील आन्दोलनों का वैचारिक प्रभाव उनकी कहानियों में स्पष्ट है। उनके चार कहानी संकलन हैं - 'निःसंर्ग', 'धरोहर', 'स्वप्न-भंग', एवं 'अपना घर'।

एक कवयित्री के रूप में ख्याति प्राप्त व्यक्तित्व की धनी हैं तारा पाँड़े। कवयित्री होने की वजह से उन्होंने अपने पात्रों को सहृदयता से देखना पसन्द किया है। उन्होंने अपनी कहानियों में आदर्शवाद को प्रमुखता दी है। आदर्श युक्त कई स्त्री- पात्रों का सृजन उन्होंने किया है। स्त्री की अभिलाषाएँ, विषमताएँ आदि उनके प्रमुख विषय हैं। लेखिका का उद्देश्य कहानी लेखन के माध्यम से स्त्री समाज के गौरव को प्रकट करना रहा है। उनके कहानी संग्रह 'उत्सर्ग' नाम से उपलब्ध है और 'शुक-पिक' नाम का एक काव्यसंग्रह भी है। स्त्री की मातृत्व-भावना को गौरवान्वित करके चित्रित करनेवाली लेखिका है कमला त्रिवेणीशंकर। उन्होंने मातृत्व को सबसे श्रेष्ठ भाव माना है। पत्र-पत्रिकाओं में छपी उनकी रचनाओं को देखने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है। मातृत्व भाव को स्वाभाविकता के साथ व्यंजित करनेवाली दूसरी कोई लेखिका नहीं है। 'पुकार', 'जयमाला' आदि संग्रहों में संकलित स्त्री प्रधान कहानियों में मातृत्व भावना की तीव्रता देखी जा सकती है। उनकी कहानियों में सामान्यतया स्त्री के चार रूप सामने आते हैं - माँ, बहन, पत्नी तथा प्रेयसी। 'भाई', 'रक्षा बन्धन', 'दृष्टि-भ्रम' आदि कहानियों में स्त्री के भगिनी रूप का चित्र प्रस्तुत किया गया है। पत्नी रूप में उनके पात्र प्रायः भारतीय मर्यादा से अनुप्राणित पति-परायण, सेवामयी एवं त्यागशीला रही हैं। सन् 1950 के पहले की अधिकांश लेखिकाएँ अपनी लेखनी के द्वारा स्त्री केन्द्रित विषयों पर ही रचनाएँ प्रस्तुत की

है। उनके अधिकतर स्त्री संबन्धी समस्याओं का समाधान ढूँढ़ने के बजाय नारी संवेदनात्मक दृष्टिकोण उभारने का प्रयास ही देखा जा सकता है।

"हिन्दी कहानी का छठा दशक हिन्दी कहानी के स्वरूप परिवर्तन की दृष्टि से विशेष महत्व का है। महत्व की पहली बात यह है कि स्वतंत्रतापूर्व की हिन्दी कहानी केवल 'कहानी' थी उस पर कोई लेबल नहीं लगा था।"[1] 'नयी कहानी' शब्द नयी कविता के तर्ज पर प्रयुक्त हुआ है। वस्तुपक्ष एवं कलापक्ष में आयी नवीनता इस शब्द की उपयुक्तता को स्पष्ट करती है। "नयी कहानी के अस्तित्व का प्रश्न यदि 1956 में उठाया गया, तो दिसम्बर 1957 में प्रयाग में होनेवाले 'साहित्यकार सम्मेलन' तक नयी कहानी को लगभगा स्वीकार कर लिया गया था।"[2] सन् 1950 के बाद भारत के सामाजिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में जो परिवर्तन आए उनका सही प्रस्तुतीकरण नयी कहानी में हम देख सकते हैं। विदेशी शासन के दबाव में पड़े भारतीय जनता स्वतंत्रता की सांस लेने लगी। लेकिन जनता के मन में स्वतंत्र भारत को लेकर जो प्रतीक्षाएँ थीं वे सफल नहीं हो पायी। सांप्रदायिकता, हिंसा, गरीबी, बेकारी आदि समस्याओं से देश का चित्र विकृत हो गया। गुलामी के समय यदि जनता विदेशी शासन के दबाव में थी तो

---

1. शिवशंकर पाण्डेय - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी कथ्य एवं शिल्प (1978) - पृ. 56
2. देवीशंकर अवस्थी - नयी कहानी सन्दर्भ और प्रकृति (भूमिका से) (1973) - पृ. 15

आज़ादी के बाद सांप्रदायिकता, अधर्म, बेकारी आदि समस्याओं के दबाव में पड़ गयी। इस कारण से अवसादों की अभिव्यक्ति नयी कहानी में हुई है। इसके अलावा सामाजिक संक्रमण के चित्र भी नयी कहानी में मिलते हैं।

निर्मलवर्मा की 'परिन्दे', अमरकान्त की 'दोपहर का भोजन', राजेन्द्रयादव की 'जहाँ लक्ष्मी कैद है', उषा प्रियंवदा की 'वापसी' आदि कहानियों में समाज की बदली हुई हालत का सटीक वर्णन मिलता है। 'नामवरसिंह कमलेश्वर की कहानी 'राजा' निरंबसिया', तेज बहादूर चौधरी की 'हत्यभरन', रांगेय राघव की 'गदल' भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत' तथा अमरकान्त की कहानी 'ज़िन्दगी और जोंक' को नयी कहानी की विशेष उपलब्धि मानते है।"[1] मन्नू भण्डारी, उषा प्रियंवदा, कृष्णा सोबती, शिवानी आदि इस दौर की प्रमुख लेखिकाएँ हैं।

मन्नू भण्डारी की अधिकांश रचनाओं में संयुक्त परिवार के विघटन की अभिव्यक्ति मिली हैं। हमारी सामाजिक परिस्थितियों में आये हुए बदलाव में हमारे पारिवारिक वातावरण को भी प्रभावित किया। पहला परिणाम संयुक्त परिवार के विघटन के रूप में हुआ। जब हमारे समाज में मुख्य काम कृषि था तब पारिवारिक एकता की आवश्यकता थी। लेकिन जब लोग कृषि छोड़कर अन्य कामकाज की

---

1. नामवर सिंह - कहानी : नयी कहानी (1966) - पृ. 29-30

ओर ध्यान देने लगे तब लोगों के बीच व्यक्ति केन्द्रता एवं लघुता स्थान अर्जित करने लगी। परिवार का विघटन होने लगा तथा कृषि का संकोच भी। इसकी अभिव्यक्ति मन्नू भण्डारी ने अपनी रचनाओं में की है।

संयुक्त परिवार के विघटन की अभिव्यक्ति सही मायने में 'एखाने आकाश नाई' कहानी में देखा जा सकता है। संयुक्त परिवार में उत्पन्न हलचल का चित्रण लेखिका ने बड़ी खूबी से किया है। एक कामकाजी महिला की बेबसी भी प्रस्तुत कहानी में प्रकट है। पारिवारिक संबन्धों एवं उनके नष्ट होने के भिन्न-भिन्न कारणों की ओर प्रकाश डालनेवाली उनकी रचनाएँ हैं - 'मैं हार गई', 'तीन निगाहों की एक तस्वीर', 'यही सच है', 'एक प्लेट सैलाब', 'त्रिशंकु', 'मेरी प्रिय कहानियाँ' आदि कहानी संग्रह तथा 'आँखों देखा झूठ' बाल कहानी संग्रह और 'आपका बंटी', 'स्वामी', 'कलवा', 'महाभोज' आदि इनके उपन्यास हैं। 'बिना दीवारों का घर' नाटक भी इन्होंने लिखा है। इस प्रकार मन्नू भण्डारी ने विषयगत वैविध्य के साथ विधागत वैविध्य से परिपूर्ण लेखन-कार्य किया है।

मन्नू भण्डारी स्त्रीवादी लेखिका नहीं है। फिर भी उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से स्त्री-आस्मिता को प्रतिष्ठित करने के लिए भरपूर प्रयास किया है। उनके मतानुसार समाज में जो स्थान पुरुष का है वही स्थान स्त्री को भी मिलना चाहिए। भारतीय स्त्री के

लिए प्रेम, विवाह तथा तलाक जैसे मूल्यों को नये सन्दर्भों में प्रस्तुत किया है। नयी स्त्री दृष्टि के तहत उपजी स्वच्छन्द व्यक्तित्व की चाह, आर्थिक स्वावलंबन की आकांक्षा आदि के लिए ये निरन्तर संघर्षशील रही है।

उषा प्रियंवदा नयी कहानी की सबसे प्रभावशाली लेखिका है। बच्चन सिंह के शब्दों में - "उषा प्रियंवदा आधुनिकता बोधी कहानीकार हैं। उनका बोध भी नया है और भाषा भी अपेक्षाकृत संयमित है। वे न कमज़ोर लड़की की कहानी कहती हैं और न भावाविष्ट क्षणों की सच्चाई को सच्चाई मानती है, अपितु उन्होंने विशेष परिस्थितियों में अकेलेपन, बेबसी, हार और लाचारी की मानवीय नियति को आकलित किया है।"[1] उन्होंने कभी भारतीय पृष्ठभूमि पर कहानियाँ लिखी, कभी अमरीकी पृष्ठभूमि पर। लेकिन अधिकांश रचनाएँ भारतीय पृष्ठभूमि पर रची है तथा भारतीय मानसिकता का चित्रण किया है। अंग्रेज़ी साहित्य के गहन अध्ययन के साथ हिन्दी के प्रति सहज रुचि ने इनके चिन्तन और अभिव्यक्ति को विशिष्ट धरातल प्रदान किया है, साथ ही देश-विदेश के भ्रमण के अनुभव ने इनकी साहित्यिक चेतना को बृहत्तर आयाम दिया है। 'पचपन खंभे लाल दीवारें, 'रुकोगी नहीं राधिका' और 'शेषयात्रा' इनकी प्रसिद्ध औपन्यासिक कृतियाँ हैं जबकि

---

1. बच्चन सिंह - आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास (1994) - पृ. 365

'कितना बड़ा झूठ', 'जिन्दगी और गुलाब के फूल', 'मेरी प्रिय कहानियाँ', 'फिर बसन्त आया' आदि इनके कहानी-संग्रह है। 'बनवास', 'कितना बड़ा झूठ', 'साबंध', 'स्वीकृति', 'ट्रिप', 'चाँदनी में एक रात' आदि अमरीकी पृष्ठभूमि पर रची गयी कहानियाँ हैं।

उषा प्रियंवदा की रचनाओं में स्त्री पात्रों को प्रमुखता मिली है। उन्होंने देश और विदेश वातावरण में स्त्री पुरुष संबन्धों का चित्रण किया है। उनके अधिकांश पात्रों की यह विशेषता रहे है कि वे अकेलेपन से ग्रस्त है। दूसरों की उपस्थिति में भी वह अपने को अकेला समझते है और अपने अस्तित्व की खोज करते रहते हैं। इस बात को प्रमाणित करने के लिए कहानीकार के शब्दों का उल्लेख यहाँ किया जा रहा है - "मैं स्वयं एक बहुत 'प्राइवाट परसन' हुँ और गहरे मित्र बनाने में मुझे समय लगता है, शायद मेरे पात्रों के अकेलेपन में, मेरी इस दृष्टि और प्रवृत्ति का प्रभाव आ लगता है।"[1]

कृष्णा सोबती महिला - लेखन के क्षेत्र में अपना अलग व्यक्तित्व रखती है। कहानीकार एवं उपन्यासकार के रूप में साहित्य जगत में विख्यात हैं। स्त्री जीवन में यौन-प्रश्नों को लेकर कृष्णा सोबती ने आधुनिक भारतीय पितृसत्तात्मक सामाजिक संरचना पर करार प्रहार किया है। 'मित्रो मरजानी', 'सूरजमुखी अंधेरे के', 'डार से

---

1. उषा प्रियंवदा - मेरी प्रिय कहानियाँ (भूमिका से) (1974) - पृ. 10

बिछुड़ी', 'ज़िन्दगीनामा' आदि इनके उपन्यास है तथा 'यारों के यार', 'तिन का पहाड़', 'बादलों के घेरे' आदि इनके प्रमुख कहानी संग्रह है। उन पर बंजाबी संस्कारों का गहरा प्रभाव है। सांप्रदायिकता उनके मुख्य विषय रहे हैं। सुधीश पचौरी ने उन पर लिखा है - "कृष्णाजी की रचना-प्रक्रिया की कुंजी मूलतः उनके नारी-पात्रों के चित्रण में निहित है; जो बार-बार उनकी कथाओं में आए हैं। कोई पंजाबी नारी जीवन के विविध स्तरों का अध्ययन करना चाहे तो कृष्णाजी की कृतियाँ खासकर 'ज़िन्दगीनामा' एक महत्वपूर्ण सन्दर्भ बन सकती है।"[1]

शिवानी का हिन्दी साहित्य में विशिष्ट स्थान है। 'मायापुरी', 'चौदह फेरे', 'कृष्णा कली', 'श्मशान चम्पा', 'भैरवी', 'चल खुसरो घर अपने', आदि उपन्यास है, वहीं 'रति विलाप', 'स्वयंसिद्धा', 'अपराधिनी', 'मेरी प्रिय कहानियाँ' आदि इनके कहानी संग्रह हैं। शिवानी ने स्त्री चित्रण में अतिरेक या पक्षपात का सहारा नहीं लिया है।

इस दौर में इनके अलावा और किसीकी भूमिका नहीं है। नई कहानी के तुरन्त बाद यद्यपि हिन्दी कहानी में तथाकथित कई नई प्रवृत्तियों का उल्लेख मिलता है। उनमें भी महिला कहानीकारों की भूमिका नहीं के बराबर है। आगे के प्रकरणों में इन लेखिकाओं की रचनाओं को ही आधार बनाया गया है।

---

1. डॉ. रामदरश मिश्र - हिन्दी उपन्यास के सौ वर्ष (1984), पृ. 442

आधुनिक कहानी में प्रतिबिम्बत आधुनिक समाज

साहित्य की सामाजिक संपृक्ति आधुनिक युग में विशेष विचारणीय हुई। आधुनिक साहित्य की सामाजिक संपृक्ति वाचाल नहीं है। यह सही है कि साहित्यकार समाज का सफल चितेरा होता है। वह जन सामान्य से अधिक संवेदनशील होता है, अधिक जागरूक होता है इसलिए वह समाज का अधिक सूक्ष्म चित्र प्रस्तुत करने की क्षमता रखता है।

सृष्टि का स्वभाव परिवर्तनशील है। संसार का सब कुछ बदलता रहता है। काल का पहिया सबको परिवर्तित करके नयेपन को उभारता हुआ घूमता रहता है। समाज भी युग सापेक्ष होता है, युग बदलता है तो समाज बदलता है, समाज के रहन-सहन, आचार-विचार, मूल्य व्यवहार बदलते हैं।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी यानि आधुनिक हिन्दी कहानी में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के भारतीय समाज का सच्चा प्रतिबिंब ही मिलता है। 'स्वतंत्रता वस्तुतः एक बुनियादी मूल्य है जिसके आधार पर समस्त नैतिक, सांस्कृतिक और मानववादी मूल्यों की इमारत खड़ी है।"[1] स्वतंत्रता और परतंत्रता जीवन के दो पक्ष हैं। यदि मनुष्य एक जगह से स्वतंत्र होता है तो दूसरी जगह परतंत्र भी होता है। भारत को

---

1. डॉ. नरेन्द्र मोहन - आधुनिकता और समकालीन रचना सन्दर्भ - पृ. 71

सन् 1947 में राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त हुई। उसीके कारण भारत में अनेक परिवर्तन हुए। उससे व्यक्ति और समाज का स्वरूप बदला किन्तु समूची व्यवस्था का बुनियादी ढ़ाँचा तो नहीं बदला। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की जनता के मोहभंग की पहचान नयी कहानी में दर्ज है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् जनमानस को विभाजन की जो पीड़ा भोगनी पड़ी उसे स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी ने रूपायित करने की पूरी कोशिश की है। 'नयी कहानी की चेतना स्वातंत्र्योत्तर भारतीय जीवन के यथार्थ की चेतना है और यह चेतना कलाकारों के अनुभव से जुड़ी होने के कारण अनेक रूप और रंग धारण करती है। अर्थात् नयी कहानी की चेतना परिवेश से जुड़े हुए व्यक्ति - मन की चेतना है। इसलिए वह न तो बाहरी यथार्थ की अनुभूतिहीन फारमूलाबद्ध कथा कहती है और न बाहरी परिवेश से विच्छिन्न होकर या बाहरी परिवेश को केवल अवचेतन की दुनिया से संदर्भित कर मात्र व्यक्ति-मन का चित्रण करती है। वह जीवन परिवेश के दबाव में बनते बिगड़ते मानवीय रिश्तों, मूल्यों, संवेदनों की अभिव्यक्ति है।'[1] परिवर्तित होते हुए सामाजिक जीवन यथार्थ और मानव संवेदना की भरपूर पहचान आधुनिक कहानी में हैं।

परिवर्तन के केन्द्र में मुख्यतः पारिवारिक परिवर्तन होते हैं और आज के समस्त परिवर्तनों के मूल में संपत्ति ही है। परिवार में

1. रामदरश मिश्र - हिन्दी कहानी : एक अन्तरंग पहचान - पृ. 57

मूल्यों का विघटन प्रायः पिता-पुत्र, माँ-पुत्र, पति-पत्नी के बीच देखा जा सकता है। पारिवारिक संबन्ध की टूटन की एक सशक्त कहानी है भीष्म साहनी कृत 'चीफ की दावत'। मूल्यहीनता के संबन्ध में साहनी जी का कथन है कि "हमारे सभी मूल्य समाजजनित हैं। ज्यों-ज्यों समाज बदलता है, हमारे मूल्य बदलते जाते हैं। न इंसान समाज से अलग हो पाता है और न ही कभी मूल्यहीनता की स्थिति आ पाती है।"[1] प्रस्तुत कहानी में उन्होंने एक दावत के इन्तज़ाम की छोटी से घटना के माध्यम से अपनी परंपरागत संस्कृति को छिपाते और दिखावटी आधुनिकता का रूप धारण किये हुए शामनाथ को सामने लाते हैं। अपने चीफ के सामने से 'माँ' को छिपाने के प्रश्न से ही कहानी शुरू होती है - "अब घर का फालतू सामान अलमारियों के पीछे और पलंगों के नीचे छिपाया जाने लगा। तभी शामनाथ के सामने सहसा एक अड़चन खड़ी हो गयी - माँ का क्या होगा?"[2] सबसे बड़ी विड़ंबना यह है कि माँ बेटे के इस व्यवहार को बुरा न मानकर स्वयं ही संकुचित हुई अपने को यहाँ वहाँ छिपाती फिरती है - "माँ दीवार के साथ एक चौकी पर बैठी दुप्पट्टे में मुहं - सिर लपीटे माला जप रही थी। सुबह से तैयारी होती देखते हुए माँ का भी दिल धड़का रहा था। बेटे के दफ्तर का बड़ा साहब आ रहा है, सारा काम सुभीते से चल जाए।"[3] शामनाथ के

---

1. आलोचना (पत्रिका) - भीष्म साहनी संत्रास का आतंक (लेख) अक्तूबर-दिसम्बर - 1962
2. संपादक राजेन्द्र यादव - एक दुनिया - समानान्तर - भीष्म साहनी - चीफ की दावत (कहानी) - पृ. 223
3. वहीं - पृ. 224

माध्यम से लेखक एक अवसरवादी आदमी के चरित्र को प्रस्तुत करता है।

उषा प्रियंवदा की 'वापसी' कहानी में एक रिटायर्ड व्यक्ति की पीड़ा है। गजाधर बाबु अवकाश ग्रहण कर आरामपूर्ण ज़िन्दगी बिताने का स्वप्न संजोकर घर वापस आते हैं परन्तु वहाँ उन्हें घोर उपेक्षा का सामना करना पड़ता है। पत्नी को भी उनका व्यवहार अच्छा नहीं लगता। सभी उन्हें धनोपार्जन का निमित्त मात्र समझते हैं। उन्हें लगता है - "उनकी उपस्थिति उस घर में ऐसी असंगत लगने लगी थी, जैसे सजी हुई बैठक में उनकी चारवाई थी।"[1] उनका बेटा अमर कहता है - "बूढ़े आदमी हैं, चुपचाप पड़े रहें। हर चीज़ में दखल क्यों देते हैं।"[2] इससे लगता है कि बदलते परिवेश में बूढ़े आदमी अकेलेपन और टूटन का शिकार हो रहे हैं। 'पैरम्बुलेटर' कहानी में बहू की दयनीय स्थिति का चित्रण देखने को मिलता है। एक मृत बच्चे को जन्म देनी पड़ी बहु पर सास और ननद सहानुभूति प्रकट नहीं करती हैं ऊपर से डाँटती भी हैं। सास कहती है - "मेरे दस बच्चों में छह जाते रहे, मैंने तो ऐसा दुःख कभी नहीं मनाया।"[3] 'नई कोंपल', 'कटीली छांह' आदि कहानियों का भी इतिवृत्त पारिवारिक विड़बनायें ही है।

---

1. उषा प्रियंवदा - ज़िन्दगी और गुलाब के फूल (क.सं) - वापसी (कहानी) (1971)- पृ. 127
2. वही - पृ. 128
3. उषा प्रियंवदा - ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - पैरम्बुलेटर (कहानी) (1971) - पृ. 4

संयुक्त परिवार का विघटन भी आधुनिक कहानीकारों ने रचना का विषय बनाया है। मन्नू भण्डारी की 'एखाने आकाश नाई' में यही विषय व्यंजित है। पति द्वारा उपेक्षित स्त्री सबके द्वारा उपेक्षित हो जाती है। स्त्री की इस दुविधापूर्ण हालत का प्रतिफलन है प्रस्तुत कहानी की चाची नामक पात्र। चाची चाहती है कि जैसे पहले संयुक्त परिवार में उपेक्षित स्त्री अपना जीवन व्यतीत कर लेती थी, वैसे ही सब लोग उसे स्वीकार करों परन्तु उसकी जिठानी उसे बड़ी ही घृणा व संशय की निगाहों से देखती है। चाची कहती है - "इन लोगों को तो मैं फूटी आँखों नहीं सुहाती। जाकर खड़ी नहीं होऊँगी कि सबको सांप सूंघ जाएगा। ...मकान के इस हिस्से के सिवा मेरे पास तो कुछ भी नहीं है। हिस्से का थोड़ा बहुत पैसा है, पर सब दबा लिया मांगती हुँ तो सबको कंटे जैसी लगती हूँ।"[1] संपत्ति लोगों के मन को किस तरह बांट देता है,यह तथ्य इस कहानी में खुलकर सामने आता है। संयुक्त परिवार में आर्थिक रूप से कमज़ोर या बेकार व्यक्ति और उसका परिवार भी पूरा संरक्षण पाते थे। परन्तु टूटते हुए परिवारों के साथ दूसरों का दुःख बांटने की भावना भी समाप्त होती जा रही है। 'सज़ा', 'इनकमटैक्स और नींद', 'नकल हीरे' आदि भी इसी कोटि में आनेवाली कहानियाँ है। शिवानी की 'रति-विलाप' कहानी में यह तथ्य दृष्टिगोचर होता है कि जो मामा अपनी अनाथ भांजी के लिए सारों ज़िन्दगी पितृ-स्नेह की

---

1. मन्नू भण्डारी - मेरी प्रिय कहानियाँ - पृ. 74

छाया प्रदान करके हर मुज़ीबत से उसे बचा ले जाता था, वही मामा अपनी भांजी का कैसा सर्वनाश कर सकता है। इसी तरह 'चन्नी' कहानी में अपनी माँ के घर में पल रही चन्नी को रखने क स्तर इन पंक्तियों में प्रकट है - 'ताई की नज़र में तो वह हमेशा चुड़ैल ही रही। चन्नी मेरे मंझले मामा की इकलौती लड़की थी। जन्मते ही उसने जननी को ड़ंसा और पिता को तो गर्भ में ही ड़ंस चुकी थी। अनाथ चन्नी को बड़ी मामाजी ने ही पाला। मेरी ननिहाल में तीन अलसेशियन भी पलते थे। अभागिनी चन्नी को भी उसी स्तर से ही पाला जाता था।"[1] व्यक्तियों के बीच संबन्ध प्रतिदिन टूटते जाते हैं।

आधुनिक समाज में स्त्री की उपस्थिति

मनुष्य के व्यक्तित्व निर्माण में समाज का हाथ होता है। किन्तु मनुष्य की यह इच्छा होती रहती है कि वह अपना व्यक्तित्व स्वयं विकसित करें। इसी इच्छा के साथ-साथ इसके मन में यह प्रश्न भी उठता है कि वह दूसरों के अनुरूप क्यों जियें? स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् स्त्री के सभी परंपरागत रूपों के संबन्ध में इस प्रकार प्रश्नचिह्न उठा है। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में चित्रित स्त्री के विविध रूपों में भी यह स्थिति देखी जा सकती है। समाज के परिवर्तन से केवल साहित्य और स्त्री की मनःस्थिति में ही बदलाव नहीं आया है बल्कि कहानीकारों के स्त्री संबन्धी दृष्टि में भी बदलाव आया है।

---

1. शिवानी - किशनूली (क.सं) - पृ. 90

आधुनिक हिन्दी कहानी ने स्त्री के विविध रूपों को परंपरागत और परिवर्तित संवेदनाओं, अनुभूतियों एवं प्रवृत्तियों के माध्यम से अभिव्यक्ति दी है जिससे स्त्री के विविध रूपों में विकास विघटन और बदलाव के बिन्दु परिलक्षित होते हैं। परिवार में स्त्री का कन्या, पत्नी, माँ, बहन रूप से स्वतः संबन्ध जुड़ जाता है क्योंकि उसके व्यक्तित्व के विकास से इनका गहरा संबन्ध है। विवाह पूर्व पारिवारिक जिम्मेदारियों के प्रति संघर्षशील स्त्री की झलक नई कहानी में देखी जा सकती है। मन्नू भण्डारी की 'क्षय' और उषा प्रियंवदा की 'सुरंग' में ज़िम्मेदारियों के प्रति संघर्ष करती हुई स्त्री का चित्रण है। 'क्षय' में लेखिका ने अपने पिता और छोटे भाई-बहनों की ज़िम्मेदारियों को निभानेवाली स्त्री का चित्रण किया है। एक ओर उसका बीमार पिता है और दूसरी ओर छोटा भाई। वह स्वयं कमाकर कोशिश ज़िम्मेदारियों से, अपनी बदत्तर हालत से संघर्ष करती है। अन्त में वह उस संघर्ष में टूट जाती है। उसकी निस्सहाय हालत कहानी के इस प्रसंग में स्पष्ट है - "आज कितना असहाय वह अनपे को महसूस कर रही थी। इतनी बड़ी दुनिया में क्या कोई भी ऐसा नहीं है जो उसकी पीठ पर आश्वासन भरा हाथ रखकर दो शब्द सान्त्वना के ही कह दे? रोते-रोते उसकी हिचकियाँ बँध गयीं। अचानक ही उसके मुँह से निकाला - "हे भगवान्! अब तो तू पापा को उठा ले! मुझे बर्दाश्त नहीं होता! मैं टूट चुकी हूँ..." और फिर उसने दोनों हाथ कसकर मुँह पर रख लिये, मानो मुँह से निकली

हुई इस बात को धकेल देना चाहती हो।"[1] ज़िम्मेदारियों के बीच उसे अपनी इच्छाओं की यानि अपनी ज़िन्दगी की कुर्बानी करनी पड़ी। यह स्त्री मन की दुःखदायक स्थिति है। उषा प्रियंवदा की 'सुरंग' में पिता के न होने के कारण पारिवारिक संघर्ष झेलती पड़ी बेटियों का चित्रण है। भारतीय स्त्रियाँ आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी नहीं होती हैं। स्त्री की आर्थिक पराधीनता की स्थिति आज भी बनी हुई है। लेकिन आज नौकरी पेशा स्त्री को दोहरी मनःस्थिति का सामना करना पड़ता है। एक ओर उसके सामने पारिवारिक ज़िम्मेदारियाँ हैं और दूसरी ओर बाह्य जीवन परिवेश है।

आर्थिक स्वावलंबन वास्तव में स्त्री की मानसिकता में भी परिवर्तन लाता है। अपनी कमाई की वजह से वह खुद स्वतंत्र महसूस करती है। उषा प्रियंवदा की 'दो अंधेरे' की सुमित्रा आर्थिक दृष्टि से स्वाधीन स्त्री है इसलिए कि वह अपने को आत्मनिर्भर अनुभव करती है। वह इससे भी संतुष्ट है कि उसकी शादी उस तरह से नहीं होगी जैसे न कमानेवाली लड़की की होती है। अपनी शादी के बारे में वह खुद सोचती है। "उसमें जीत केवल सुमित्रा की अपनी जीत होगी। वह वर की दिखाई नहीं जा रही है। आज उसके लिए पिता कुछ चिन्तित और, कुछ दीन स्वर में यह नहीं पूछेगे 'आपको लड़की पसन्द

---

1. मन्नू भण्डारी - यही सच है (क. सं) - क्षय (कहानी) (1966) - पृ. 24

आयी?"[1] पुराने ज़माने में हाशिए पर धकेल दिये गये स्त्रीगण आज आर्थिक स्वावलंबन के कारण अपने आप स्वावलंबन अनुभव कर रहा है। 'ज़िन्दगी और गुलाब के फूल' की वृन्दा भी अपनी कमाई की वजह से स्वतंत्र जीवन जीती है। आर्थिक स्वावलंबन के कारण ही उसका घर में आत्मसम्मान बढ़ जाता है। लेकिन ऐसे भी लोग हमारे समाज में है जो स्त्री की कमाई को स्वीकारने में आत्मग्लानि का अनुभव करता है। जैसे कि मन्नू भण्डारी की कहानी 'नई नौकरी' की रमा, अर्थ की दृष्टि से स्वतंत्र होने पर भी पति की इच्छाओं के कारण नौकरी छोड़नी पड़ती है और बाद में वह घुटन और पीड़ा की शिकार बन जाती है। इससे वह न तो अपने अतीत के स्वावलंबी रूप को भूल पाती है और न ही वर्तमान में जीवन जी पाती है।

नौकरी पेशा स्त्री के साथ एक दूसरी समस्या यह है कि उसे घर से बहुत दूर जाकर भी नौकरी करनी पड़ी है। इसलिए उन्हें घर से अलग रहना पड़ता है। ऐसी स्थिति में उसे विभिन्न मनःस्थितियों के मध्य गुज़रना पड़ता है। उषा प्रियंवदा की 'छुट्टी का दिन' की माया घर से अलग रहकर नौकरी करती है। माया दूसरे शहर में कार्यरत है। वह सप्ताह में सात दिन तो काम में व्यस्त है केवल एक दिन छुट्टी का बचता है जिसमें उसे सब काम करना पड़ता है। एक बार वह तय

---

1. उषा प्रियंवदा - ज़िन्दगी और गुलाब के फूल (कं.स) - दो अंधेरे (कहानी) (1971) - पृ. 97

करती है कि छुट्टी का दिन मज़े में काटें। इसलिए वह पुरुषों की भाँति घर से बाहर अकेली घूमती है, पिक्चर अकेले देखने जाती है। किन्तु उसको हमेशा अपनी ज़िन्दगी में नीरसता एवं व्यर्थता का ही एहसास होता है। वह सोचती है कि "किसलिए वह घर-बार छोड़कर इतनी दूर आकर पड़ी थी किसलिए वह सुबह से शाम तक कालेज में मगजपच्ची करती थी। इसलिए कि वह ज़िन्दगी के दिन एक-एक करके गुज़रते जायें और हर गुज़रा हुआ दिन उसके जीवन का खालीपन और भी गहरा करता जाये और एक दिन वह इस जीवन में उसने क्या पाया, तो पता चले कि वह एक लम्बे अनन्त मरूस्थल की तरह था।"[1] इस तरह वह अपने निजी धरातल पर अकेलेपन की पीड़ा को महसूस करती है। यह भी स्त्री जीवन का एक पक्ष है।

आर्थिक स्वाधीनता का स्त्री के व्यक्तित्व पर दोहरा प्रभाव पड़ता है। एक ओर उसका निजी व्यक्तित्व प्रभावित होता है तो दूसरी ओर उसकी पारिवारिक संबन्धों पर भी प्रभाव पड़ता है। भारत में स्त्री आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी होने के बावजूद भी परिवार से जुड़ी हुई हैं। आर्थिक स्वतंत्रता से उसे पारिवारिक परंपराओं, रूढ़ियों, मान्यताओं एवं मर्यादाओं से पूर्णतया मुक्ति नहीं मिलती है। उसे आत्मनिर्भरता का एहसास तो होता है और उससे उसके मन में वैयक्तिक चेतना का भी

---

1. उषा प्रियंवदा - ज़िन्दगी और गुलाब के फूल (क.सं.) - छुट्टी का दिन (कहानी) (1971) - पृ. 56

अनुभव होता है। इसलिए एक ओर इसके सामने परंपरागत संस्कार एवं मानसिकता है और दूसरी ओर वर्तमान स्थिति और अपना निजी व्यक्तित्व। इसके फलस्वरूप स्त्री जीवन में तनाव एवं द्वन्द्व की स्थितियाँ अधिक उभरती हैं। स्त्री के व्यक्तित्व का यह परिवर्तित रूप आधुनिक कहानी में देखा जा सकता है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के दौर में स्त्रियों की हालत में सुधार आयी थी। आर्य समाज, ब्रह्म समाज आदि संस्थाओं ने स्त्रियों की शिक्षा का प्रचार किया। स्त्री शिक्षित होने से एक लाभ यह हुआ कि वह अपने ऊपर होनेवाले अत्याचारों से अवगत होने लगीं और दुष्परिणाम यह हुआ कि शिक्षित या आधुनिक कहलाने की ओढ़ में वह अपने ही घर को तहस-नहस करती गयी। कहीं कहीं वह गुमराह होती गयी। स्वतंत्रता पूर्व भारत में वेश्यावृत्ति की समस्या अधिक भयावह रूप में थी। लेकिन स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद कानून के माध्यम से वेश्यावृत्ति को काफी हद तक समाप्त करने की कोशिश की गयी है। अब वेश्यावृत्ति का यहाँ उतना भयावह रूप नहीं है अपितु उसने अपना दूसरा रूप धारण कर लिया है। जब क्लबों, होटलों आदि में स्त्री का पैसा कमाना प्रारंभ हो गया है, अब उन्हें वेश्यालयों में जाने की आवश्यकता नहीं है। वेश्याओं के पीछे अधिकांशतः पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक कारण ही प्रमुख रूप से रहते हैं। मन्नू भण्डारी की 'तीन निगाहों की एक तस्वीर' में दर्शना को पारिवारिक कारणों से वेश्या का पेशा

स्वीकार करना पड़ता है। उसका पति उसे बदचलन समझकर घर से बाहर निकाल देता है। वेश्या जीवन जीने के बाद भी उसके मन में सभी रिश्तेदारों के प्रति लगाव बना रहता है। लेकिन घरवाले उसे इनकार कर देते हैं। इसमें वेश्याओं के जीवन यथार्थ की झांकी है। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में परिवार एवं परिवारेतर संबन्धों की दृष्टि से स्त्री के विभिन्न रूपों के विश्लेषण से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् नवीन मनःस्थितियों और परिस्थितियों से स्त्री का व्यक्तित्व प्रभावित हुआ है जिसमें उसने एक ओर प्राचीन मूल्यों एवं मान्यताओं का विरोध किया है, दूसरी ओर पुरुष की परंपरागत दृष्टि को उल्लंघित करके का प्रयास किया है।

स्त्री की उपस्थिति का पारंपरिक रूप

अगर प्राचीन काल से लेकर अब तक के इतिहास पर नज़र डालें तो पता चलता है कि स्त्री की स्थिति में थोड़ा बहुत बदलाव आया है। एक ज़माना था जबकि मातृसत्तात्मक समाज कायम था, तब स्त्रियाँ पूर्ण रूप से आज़ाद थी, अपने विचारों से भी और व्यवहार से भी। तब नारी के ऊपर किसी प्रकार की पाबन्दी नहीं थी। लेकिन जब वैयक्तिक संपत्ति की बात कायम होने लगी, संपत्ति और उत्पादनों पर जब वैयक्तिक अधिकार होने लगा तब स्त्री की भी स्वतंत्रता नष्ट हो गयी। वह भी केवल अपने परिवार की, अपने पति की संपत्ति मात्र रह

गयी। वह संपत्ति जिसके द्वारा वे लोग अपने पुत्रों को प्राप्त कर सके और इन पुत्रों के द्वारा अपने पितृसत्तात्मक समाज को भी कायम रख सके। इस दृष्टि से स्त्रियों पर स्त्रीत्व और पतिव्रता की रीति थोपी गई क्योंकि पुरुष को अपनी धन-संपत्ति को कायम रखने के लिए अपने ही औलाद की ज़रूरत थी। इस प्रकार मातृसत्तात्मक समाज की बरबादी स्त्रियों की अपनी बरबादी थी। इस बरबादी से आज भी वे अपने को मुक्त नहीं कर सकती है।

सदियों से भारतीय समाज पुरुष प्रधान रहा है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में स्त्री को दूसरा स्थान ही मिलता आया है। सामाजिक रीति-रिवाज़, पारिवारिक बन्धनों आदि में सदियों से स्त्री बँधी हुई है। प्राचीनकाल से स्त्री को यह शिक्षा दी जाती रही है कि उसका काम दूसरों के लिए जीना है, अविवाहित रहने तक अपने परिवारवालों के अत्याचारों को तथा विवाह के पश्चात् ससुरालवालों के अत्याचारों को सह लेना ही स्त्री की भलाई मानी जाती रही है। बाल विवाह, सति प्रथा, पर्दा प्रथा आदि गन्दे रीति-रिवाज़ों के कारण वह अपनी अस्मिता ही खो बैठी। वह दूसरों के इशारे की कठपुत्तली बन गयी। अगर वह उठने कहे तो उठती है बैठने कहे तो बैठती है। वह अत्याचार सहती रही। यदि इन अत्याचारों के प्रति वह एक भी शब्द अपने मुँह से निकालती है तो समाज उसको दोषी ठहराता था। शिक्षित एवं कामयाब महिलाओं के साथ भी यही घटित होती है। "पुरुष निर्मित पितृसत्तात्मक

नैतिक प्रतिमान, नियम, कानून, सिद्धान्त, अनुशासन मूलतः स्त्री को पराधीन, उपेक्षिता, अन्या बनाने के लिए ही सुनियोजित ढ़ंग से गढ़े गये हैं। स्त्री के प्रति आलोचकों का दृष्टिकोण भी स्त्री विरोधी ही रहा है। यदि कोई स्त्री, स्त्री मुक्ति के लिए ऐसा लेखन, कहानी, कविता, निबंध, चित्र प्रस्तुत करे तो उनकी वितृक प्रतिक्रियाएँ अपने हिंस्सात्मक चरित्र के साथ सामने आती हैं। वहाँ स्त्री के व्यक्तित्व पर संदेह किया जाता है। पुरुष साहित्य में जो चाहे कुछ भी लिख सकता है, चित्रकार चित्र अंकित कर सकता है, लेकिन यदि कोई स्त्री अपनी इच्छानुसार लिखने का साहस करे, कोई चित्र बनाने का साहस करे तो पुरुष संसार उस रचना और कलाकार पर ऐसे टूट कर पड़ता है जैसे गिद्द माँस के टुकड़े को नोचते हैं। अतः ऐसे दोहरे मानदंड़ साहित्य की दुनिया, कला की दुनिया में भी बराबर सक्रिय है।"[1] स्त्री जीवन के हर क्षेत्र में अपनी विजय के चिह्न लगाने के बावजूद भी समाज ने पूर्णतः उसे स्वीकार नहीं किया है। स्त्री की उपस्थिति में अब भी परंपरा की निशानी है। परंपरा की झलक स्वयं उसके मन में है और समाज उस पर आरोप भी लगाता है।

हर इन्सान के व्यक्तित्व में अतीत, वर्तमान और भविष्य तीनों का महत्व होता है। अतीत उसके मानसिक धरातल में रहता है जिसमें परंपरा के तत्व निहित रहते हैं जिनका प्रभाव व्यक्ति के व्यक्तित्व के

1. राकेश कुमार - नारीवादी विमर्श - पृ. 123

विकास के दौरान पड़ता है। यह व्यक्तित्व के विकास और उसके परिवेश पर निर्भर करता है कि उसकी मानसिकता का विकास किस धरातल पर हुआ है। अपनी परंपरा यानि प्राचीन मूल्यों एवं आदर्शो को स्त्री अपने व्यक्तित्व का भाग बनाकर चली आ रही है। स्त्री के लिए आज भी पति परमेश्वर है। मन्नू भण्डारी कृत 'नशा' की आनन्दी का पति शराबी है। वह स्वयं नहीं कमाता अपितु आनन्दी जो कुछ कमाकर लाती है वह उसने छीन लेता है और खूब पीता है। बाप की बुरी आदतों के कारण बेटा घर से भाग जाता है। बारह वर्षों के बाद वह वापस जाता है। आने की खबर पति उसको देता है और उससे पैसे लेकर शराब पीने चला जाता है। तब आनन्दी सोचती है - "शंकर आज के दिन भी शराब पीने गया। क्यों नहीं वह सारे मुहल्ले में दौड़ता फिरा? क्यों नहीं उसने घर-घर जाकर खबर दी कि किशनू आ रहा है? क्यों नहीं उसके पास बैठकर बात की कि किशनू के आने की तैयारी में क्या-क्या किया जाये?"[1] किशनू लौटकर जब देखता है कि उसका पिता अभी भी वैसा ही शराबी है तो वह माँ से कहता है - "पिछले 12 सालों से यों ही तू इस निखट्टू को पिला रही है न?"[2] इस वाक्य से ही पारंपरिक तौर पर ज़िन्दगी बितानेवाली एक स्त्री की मजबूरी स्पष्ट होती है। बेटे के साथ वहाँ से चले जाने के बाद भी वह

---

1. मन्नू भण्डारी - यही सच है (क.स.) नशा (कहानी) (1966) - पृ. 100
2. मन्नू भण्डारी - यही सच है (क.स.) नशा (कहानी) (1966) - पृ. 105

बेटे और बहू से छिपाकर पैसे कमाती है और अपने पति के पास भेजती है। पति की आदतें और व्यवहार खराब होने के बावजूद भी वह पति को छोड़ नहीं पाती।

स्त्री बचपन से दमित एवं प्रताडित रही है। चाहे यह दमन माता-पिता, भाई-बन्धु के कारण ही क्यों न हो। इस दबाव का प्रभाव उस पर इस तरह घर कर गया कि उसकी अपनी मानसिक स्थिति ही संकुचित हो गयी है। उपर्युक्त कहानी की स्त्री-पात्र 'आनन्दी' इसी तनाव से गुज़र रही है। भारतीय स्त्री अपने किसी भी दौर में पारंपरिकता को छोड़ नहीं पाती। ऐसा कहा जाता है कि, स्त्री आर्थिक स्वावलंबन से अपने पैरों पर खड़े होने में सक्षम हो जाती है। परन्तु इस पात्र में आर्थिक स्वावलंबन होने के बावजूद अपने आश्रय 'पति' को (जैसा कि वह समझती है) जो खुद उसका आश्रय है छोड़ नहीं पाती। बेटे से वह उस नरक भरी ज़िन्दगी से बचाने को प्रार्थना करती है कि - मुझे यहाँ से ले चल, किशनू... यहाँ से ले चल। मैं अब एक दिन भी इस घर में रहना नहीं चाहती। मैंने बहुत सहा है, अब और नहीं सहा जाता, मुझे यहाँ से ले चल आज ही।"[1] लेकिन बेटे के साथ चले जाने के बाद वह उस छाया को तलाशती रहती है जिसे वह हमेशा चाहती थी। ऐसा शायद इसलिए होता है कि स्त्री पुरुष (पति) रूपी चार

---

1. मन्नू भण्डारी - यही सच है (क.स.) नशा (कहानी) (1966) - पृ. 105

दीवारी में कैद रहना चाहती है। यह कैद उसे परंपरा ने सिखाई है जिसमें वह आर्थिक पूर्णता के बावजूद जकड़ी हुई है। परन्तु इसका मतलब यह नहीं है कि सारी स्त्रियाँ इस घेरे में आती हैं। कुछ स्त्रियाँ ही ऐसी है जो इस दोहरेपन से बाहर निकल नहीं पातीं हैं।

परंपरागत वर्ग के अन्तर्गत स्त्री का आदर्श पत्नी रूप के साथ मातृ रूप, भगिनी रूप आदि भी आते हैं। स्त्री का मातृरूप प्राचीनकाल से ही अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है। प्रत्येक स्त्री की स्वाभाविक इच्छा माँ बनने की होती है। विवाहोपरान्त पुत्र-जन्म समाज में तथा परिवार में उसकी मान-मर्यादा में वृद्धि करता है। मन्नू भण्डारी ने स्त्री के मातृरूप को अत्यन्त श्रद्धा रूप में देखा है। उनकी स्त्रियाँ चाहे जितनी शिक्षित क्यों न हो चाहे वैवाहिक जीवन को व्यक्तित्व का विक्रय मानती हो, सामाजिक ढ़ाँचे में क्रान्ति का आह्वान करती हो, लेकिन वे भी स्त्री की पूर्णता मातृत्व में स्वीकारती हैं। उनकी 'जीती बाज़ी की हार' की मुरला एक उच्च पदाधिकारी है जो विवाह को महज बन्धन मात्र समझती है। लेकिन अन्त में अपनी जीती हुई बाज़ी को हार में बदल कर मातृरूप के महत्व का समर्थन कर देती है। प्रस्तुत कहानी की निम्नलिखित पंक्तियाँ स्त्री के मातृरूप की पक्षधर है - 'नारी सब कुछ होकर भी स्त्री है और नारी को एक साथी चाहिए, एक सहारा चाहिए, परिवार चाहिए और चाहिएँ बच्चें। उच्च से उच्च शिक्षा भी उसकी इस

भावना को नहीं कुचल सकती।"[1] अतः हम कह सकते है कि नारी में हमेशा एक सहारे की गूँज बनी रहती है, या फिर कह सकते है कि उसमें सहारे की गूँज बनायी जाती है।

उषा प्रियंवदा की कहानी 'दोस्त' का पति, पत्नी की भावनाओं की जगह दोस्तों और उनके साथ मौजमस्ती को ज़्यादा महत्व देता है। पति का यह व्यवहार सुरेखा को यह सोचने के लिए मज़बूर करता है - "विवाह नारी के लिए जीवन भर की बेड़ी है। चुपचाप ऐ लो, अपने को पति और बच्चों पर निछावर कर दो, और पति देवता अपने दोस्तों के संग ऐश करें।"[2] परिवार स्त्री के लिए आज भी केन्द्र बिन्दु है। इसलिए वह पुरुष के प्रति या तो निष्ठमयी रही है या पति की क्रूरता एवं यातना को सहन करते हुए कभी मानसिक आक्रोश और कभी मानसिक विद्रोह व्यक्त किया है। 'दो अंधेरे' की कौशल्या अपनी नौकरी पेशा बहन को देखकर सोचती है 'अगर उसने विवाह न कर नौकरी कर ली होती तो वह भी शायद सुखी रहती है।"[3] वह अपनी वर्तमान स्थिति में खुश नहीं है। बच्चों के पैदा होने के बाद विवाह का जो आकर्षण था वह भी समाप्त हो गया। इस हालत में वह यह महसूस करती है कि 'वह दिनेश के लिए सहज प्राप्य नारी शरीर है,

---

1. मन्नू भण्डारी - मैं हार गई - (क.सं.) - जीती बाज़ी की हार (कहानी) (1957) - पृ. 39
2. उषा प्रियंवदा - फिर बसन्त आया (क.सं.) दोस्त (कहानी) (1971) - पृ. 22
3. उषा प्रियंवदा - जिन्दगी और गुलाब के फूल (क.सं.) दो अंधेरे (कहानी) (1971) पृ. 102

उस शरीर से परे अन्यत्र कुछ भी है, यह उसने जानने की चेष्टा न की, न उसे छू पाने की।"[1] दिनेश उसके साथ विश्वासघात भी करता है। दिनेश किसी पड़ोस की लड़की के साथ अवैध संबन्ध रखता है। बात खुलने पर दिनेश कौशल्या से बहुत माफी मांगता है, लेकिन वह पति से कहती है "तुमने मेरा विश्वास तोड़ दिया दिनेश, तुमने मुझे छला। क्या मैंने तुम्हें प्यार नहीं दिया? क्या मैंने तुम्हें अपना शरीर नहीं दिया? मैं कष्टों में भी मुस्कुराती रही, थोड़े ही में संतुष्ट रही, उसका बदला तुमने मुझे इस तरह दिया.... "[2] इन सब स्थितियों के बीच में बार-बार यह ध्यान आता है कि अगर वह नौकरी करती तो ऐसा न झेलना पड़ता। इस प्रकार अर्थ की दृष्टि से पराधीन होने के कारण वह अपने आप को द्वन्द्व एवं तनाव में पाती है। कौशल्या भी स्त्री की पारंपरिक मौजूदगी की ही निशानी सिद्ध होती है। विवाह और तलाक, उत्तराधिकार, शिक्षा, वेश्यावृत्ति से मुक्ति जैसे विभिन्न वैधानिक समस्याओं से गुज़रती हिन्दी कहानियाँ सिद्ध करती है कि इन सामाजिक विधानों और विधियों की प्रस्तावना के बावजूद अब भी भारतीय स्त्री का शोषण नहीं रुका है। आर्थिक, मानसिक और शारीरिक रूप में स्त्री के शोषण की प्रक्रिया आज भी विद्यमान है।

---

1. उषा प्रियंवदा - जिन्दगी और गुलाब के फूल (क.सं.) दो अंधेरे (कहानी) (1971) पृ. 101
2. वही - पृ. 102

परंपरा का विरोधी रूप

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् स्त्री के व्यक्तित्व में विचार और भावना से संबद्ध वस्तु जगत में परिवर्तन आए जो स्वतंत्रता पूर्व समय में नहीं थे। तब तक परंपरा की बेड़ियों में जकड़ी हुई स्त्रियाँ अपने प्राकृतिक और जैविक अधिकारों के प्रति जागरूक बनीं। इसके फलस्वरूप स्त्रियों के विचारों में परिवर्तन आये। घर की दहलीज़ के बाहर कदम तक न रखनेवाले स्त्रियों ने तब बाहर आना शुरु किया। अपनी बेड़ियों को तोड़कर अपने पैरों पर खुद खड़े होने का प्रयास उन्होंने किया। पुरुष के लिए स्त्री जहाँ मात्र उपभोग की वस्तु थी वहीं स्त्री आज उसके साथ हर क्षेत्र में बढ़ रही है। अब उसके समक्ष केवल पारिवारिक समस्याएँ ही प्रमुख नहीं रही हैं अपितु सामाजिक समस्या भी प्रमुख हो उठी हैं। ज़िम्मेदारी का बोध आधुनिक स्त्री की नवीन उपलब्धि है। इस बोध के कारण ही स्त्री में विकास की नयी संभावनाएँ पनपती हैं और पुरुष के साथ खड़ी होने के लिए स्त्री तत्पर हुई है। आधुनिक युग में स्त्री संबन्धी दृष्टि में जो महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ वह यह था कि स्त्री मात्र स्त्री है, देवी, त्याग आदि की प्रतिमूर्ति नहीं। आधुनिक कहानीकार स्त्री को स्त्री के रूप में स्वीकार करता है और उसे स्वतंत्र व्यक्तित्व और इकाई के रूप में अभिव्यक्ति देता है। इसलिए वह कहता भी है 'नारी यों ही आदिकाल से सौन्दर्य (और उसके शास्त्र) तथा कला का केन्द्र रही है, फिर आत्म निर्भर, स्वयं समर्थ अकेली नारी तो पुरुष के

लिए सबसे बड़ा प्रलोभन औऱ निमंत्रण भी है। इस निमंत्रण को प्रायः हर पुरुष कथाकार को स्वीकार करना पड़ा है और अपन-अपनी सीमाओं, संस्कारों के साथ प्रत्येक ने उसकी शक्तियों मज़बूरियों और दयनीयताओं को कथा-सृष्टि दी है। पुराने संस्कारों और नयी परिस्थितियों के बीच नारी किस प्रकार पुरुष के अनेक टूटे संदर्भों के बीच अकेली होती जाती है... इसे आज की कहानी अधिक वास्तविक भूमि, अनेक सूक्ष्म-संश्लिष्ट धरातलों और विविध संवेदनशील पक्षों से चित्रित करती है।"[1] इससे स्पष्ट है कि कहानी के क्षेत्र में स्त्री को अपने पारंपरिक रूप से एक पुनर्जनी मिली। कमलेश्वर ने स्त्री की बदली मनःस्थिति को स्वीकार करते हुए कहा कि "औरतें अब औरतें हैं, वे झूठी सती या वेश्यायें नहीं हैं... अब संबन्धों के ध्रुव दो हैं - स्त्री और पुरुष-जो संगतियों और विसंगतियों के साथ अपनी प्राकृतिक अपेक्षाओं से सीधे-सीधे संबद्ध हैं। ...नारी देह अब अपने निर्णय की वस्तु है। धोखाधड़ी, बलात्कार या दीदीवादी - भाभीवादी विकृत परंपरा का मानसिक अत्याचार अब लेखकीय सहानुभूति का विषय नहीं रह गया है।"[2] समाज में बुलन्द हो रही स्त्री के विद्रोही स्वर का प्रभाव साहित्यकारों पर पड़ा है। पूर्व के लेखनों ने स्त्रियों की दीन दशा के प्रति करुणा का भाव प्रकट करना लेखकीय दायित्व के माना है।

---

1. राजेन्द्र यादव - एक दुनिया समानान्तर - पृ. 36
2. कमलेश्वर - नयी कहानी की भूमिका (1978) - पृ. 19

लेकिन अब करुणा की जगह पर महिलाओं के अंदर अपनी दृर्दशा के प्रति आक्रोश एवं आक्रामकता के भाव प्रकट होने लगे हैं। परिवार से लेकर समाज, राजनीति आदि क्षेत्रों में समान अधिकारों के लिए वे जागरूक हैं। वह तो अब नाना रूढ़ियों, वर्जनाओं को हटाते हुए शिक्षा, राजनीति, नौकरी, प्रशासन, विज्ञान, प्रौद्योगिकी, फिल्म आदि विभिन्न क्षेत्रों में अपनी कामयाबी को प्रकट करते हुए पुरुष अधिकार के दंभ को तोड़नेवाली प्रबल शक्ति के रूप में अपनी उपस्थिति दर्ज कर रही हैं। आधुनिक कहानियों में ऐसे स्त्री पात्रों का अवतरण हुआ है, जो केवल घर गृहस्थी, पत्नी के पारंपरिक कर्तव्यों तक सीमित रहनेवाली नहीं हैं, न ही पारंपरिक दायरे में बँधे रहकर कुछ सामाजिक अधिकारों एवं सम्मान को प्राप्त कर लेने से संतुष्ट रहनेवाली हैं अपितु अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए कतिपय नैतिक एवं पारिवारिक बन्धनों एवं यौन वर्जनाओं को ध्वस्त करते हुए अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व को स्थापित करने में सचेष्ट दिखाई पड़ती हैं।

आज हर शिक्षित स्त्री अपने जीवन साथी को स्वयं निश्चित करने का अधिकार रखती है। लेकिन कभी-कभी वह ऐसी मौके पर आकर रुक जाती है, जहाँ उसके लिए यह फैसला करना मुश्किल हो जाता है। यों भी आधुनिक स्त्री अब उस पारंपरिक नैतिकबोध से काफी कुछ मुक्त हो चुकी है, जिसमें कभी सिर्फ पतिव्रता धर्म ही उसके जीवन का प्रमुख सार था। किन्तु अब वह पति और प्रेमी इन दोनों में कोई

खास भेद नहीं करती। पति यानि प्रेमी के होते हुए किसी अन्य पुरुष से प्यार करना उसके लिए पतिव्रता भंग नहीं है। किन्तु ऐसी स्थिति में अक्सर आधुनिक स्त्री एक अन्तर्द्वन्द्व का अनुभव करती है। मन्नू भण्डारी की 'यही सच है' कहानी आधुनिक स्त्री के उक्त द्वन्द्व को स्वाभाविक निर्णय तथा साहस के साथ अभिव्यंजित करती है किन्तु पारंपरिक नैतिकबोध को गहरा आघात पहुँचाकर। प्रस्तुत कहानी की स्त्री पात्र दीपा शिक्षा संपन्न एक आधुनिक युवति है जो अपने दोनों प्रेमियों के बीच फँस गयी है। उसका अपना तर्क है - "अठारह वर्ष की आयु में किया हुआ प्यार होता है भला। निरा बचपन होता है महज पागलपन। उसमें आवेश रहता है पर स्थायित्व नहीं। गति रहती है पर गहराई नहीं है। जिस वेग से वह आरंभ होता है ज़रा सा झटका लगने पर उसी वेग से टूट जाता है..."[1] इसीलिए वह सच्चा नहीं होता। अनिश्चितता की हालात में दीपा मुश्किल में पड़ जाती है कि सही क्या है? गलत क्या है? किन्तु लम्बे अन्तर्द्वन्द्व के गुज़र जाने के बाद वह समझ जाती है कि स्पर्श का क्षण ही सत्य है - "यह स्पर्श, यह सुख, यह क्षण ही सत्य है, वह सब झूठ था, मिथ्या था, भ्रम था...."[2] वस्तुतः दीपा की यह धारणा उस बात की ओर इशारा करती है कि वह किसी भी परंपरागत मूल्यों को स्वीकृत नहीं करती।

---

1. मन्नू भण्डारी - यही सच है (क.सं.) (1966) - पृ. 149
2. वहीं - पृ. 171

मन्नू भण्ड़ारी की एक और कहानी 'ऊँचाई' की शिवानी एक ऐसा स्त्री- पात्र है जो अपने विवाह पूर्व प्रेमी से भी संबन्ध रखती है और पति से भी। प्रेमी से इसलिये कि वह उसीके कारण अविवाहित है और पति से इसलिए कि वह उसका वर्तमान जीवन है। पति उससे क्षुब्ध होने पर वह कहती है कि "ऐसी बात भी तुम्हारे मन में क्यों आती है? अतुल अपनी सीमायें जानता है। जी उसका नहीं, उसे पाने की लालसा भी कहीं नहीं करता... मेरे जीवन में जो तुम्हारा स्थान है, उसे कोई भी नहीं ले सकता, लेना तो दूर, उस तक कोई पहुँच भी नहीं सकता। किसी के कितनी ही निकट चली जाऊँ, चाहे शारीरिक संबन्ध भी स्थापित कर लूँ पर मन की जिस ऊँचाई पर तुम्हें बिठा रखा है। वहाँ पर कोई नहीं आ सकता।"[1] प्रस्तुत स्त्री पात्र में पत्नी और प्रेमिका की भूमिका को लेकर द्वन्द्व एवं तनाव नहीं है। वह अपने व्यवहार और विचार से दोनों की भूमिका एकसाथ निभाती है। लेखिका की 'तीसरा आदमी' का शकुन भी ऐसा ही एक पात्र है, जो निर्द्वन्द्व भाव से दोनों संबन्धों का निर्वाह करती है। उसमें न तो मानसिक तनाव है और न ही आत्मग्लानि। "बन्द दराजों के साथ" की मंजरी पुनः विवाह इसलिए करती है क्योंकि उसके पति और किसी के साथ अवैध संबन्ध में जुड़ा है। वह पति से तलाक लेते समय कहती है - आज की ज़िन्दगी का हर पहलू हर स्थिति और हर संबन्ध एक

---

1. मन्नू भण्डारी - एक प्लेट सैलाब (क.सं) तीसरा आदमी (कहानी) - पृ. 148

समाधीन समस्या होकर ही आता है जिसे सुलझाया नहीं जा सकता केवल भोगा जा सकता है। जिसमें आदमी निरन्तर टूटता और बिखरता चलता है।"[1] इस तरह वह किसी भी समझौते में न पड़कर नया राह स्वयं ढूँढ लेती है। पुरुष प्रधान समाज द्वारा स्त्री पर थोपी गयी रूढ़ियों एवं मान्यताओं का पालन करने के लिए स्त्री आज तैयार नहीं होती। मतलब है कि स्त्री संबन्धी परंपरागत धारणाओं को दूर फेंककर स्वतंत्र होने के लिए प्रयत्नशील स्त्री पात्रों का चित्रण ही लेखिका ने यहाँ किया है।

उपर्युक्त मानसिकता युक्त स्त्री पात्रों का चित्रण उषा प्रियंवदा ने भी अपनी कहानियों के माध्यम से किया है। 'परछाइयाँ' में जो स्त्री पात्र है वह पत्नी और प्रेमिका दोनों रूपों को सहज रूप में आत्मसात कर लेती है। उसे यह चिन्ता नहीं कि दूसरे लोग क्या सोचेंगे। वह यह समझती है कि वह दोनों के प्रति ईमानदार है। वास्तव में यह बात स्पष्ट हो जाती है कि अधिकतर स्त्रियाँ अपनी परंपरावादी नैतिकादर्शी से पूर्णतया मुक्त हो रही हैं। शताब्दियों से पीड़ित स्त्री स्वतंत्रता की राह की तरफ उन्मुक्त होना चाहती है। अपनी बेड़ियों को तोड़ने का आग्रह सदियों से उसके मन में है। लेकिन परंपरागत मूल्यों को महत्व देनेवाली एवं उन मूल्यों से बंधित संस्कृति से मुक्त होने की छटपटाहट भी उसमें द्रष्टव्य है।

---

1. मन्नू भण्डारी - एक प्लेट सैलाब (क.सं) तीसरा आदमी (कहानी) - पृ. 25-26

आधुनिक हिन्दी कहानी की स्त्री की उपस्थिति की प्रासंगिकता

जिस तरह सिक्के के दो पहलू होते है उसी तरह समाज के भी दो पहलू है - स्त्री और पुरुष। जिस प्रकार किसी एक पहलू के न रहने से सिक्के की महत्ता नहीं रहती उसी प्रकार समाज के किसी एक हिस्से के टूटने या बराबरी का दर्जा न मिलने पर समाज का अस्तित्व ही नहीं रह जाता, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष। लेकिन पुरुष प्रधान समाज के होने से पुराने ज़माने से लेकर स्त्री दबकर रहने के लिए मज़बूर थी। साहित्य के क्षेत्र में भी स्त्री की सही भागीदारी देरी से हुई। पहले पहल उनका लेखन ठीक वैसा था जैसे कि उनकी ज़िन्दगी। अर्थात् चार-दीवारी में कैद उनकी ज़िन्दगी के समान सीमित थी उनका रचनात्मक क्षेत्र भी। तमाम प्रकार की प्रगतिशीलताओं के बावजूद स्त्री की समस्याएँ जैसी की तैसी बरकरार रही हैं। शिक्षा और आधुनिकता के प्रभाव से समाज की मानसिकता में थोड़ा बहुत परिवर्तन तो आ गया। लेकिन फिर भी स्त्रियाँ पराधीनता की बेड़ियों से जकड़ी हुई हैं। खुद स्त्रियों को इसका एहसास होना है कि हमें भी इस समाज में उतना ही अधिकार है जितना कि पुरुषों का है। उन्हें आधुनिकता की चकाचौंध में अपनी पहचान को खोना नहीं है बल्कि उसे और भी उज्ज्वलित बनाना है। आज भी अंधेरे में भटक रहे स्त्री-मन को सही राह दिखाना, उन्हें अपने प्रति, अपने अधिकारों के प्रति सचेत कराना, यही कार्य स्त्री लेखन के ज़रिये संभव हो रहा है।

प्रतिरोध जागरण का उदाहरण है। जागरण मानवीयता का निदर्शन भी है। महिला कहानीकारों के स्त्री बिंबों में कहीं-कहीं प्रतिरोधी स्थितियाँ अपनी कर्कशता के साथ दिखाई देती है। इसमें एक स्त्री की अभिव्यक्ति नही बल्कि एक सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति हमें मिलती है। कहानी में भले ही एक स्त्री पात्र अपनी आवाज़ बुलन्द कर ले, आस्वादन के सन्दर्भ में वह एक सामूहिक आवाज़ में परिणत हो जाती है। प्रत्येक कहानी एक-दूसरे से अलग-थलग है। यह आवश्यक भी है। कहानी का जो आख्यान-तंत्र है वह विषय वस्तु की नयी संभावनाओं से संबन्धित है। प्रायः महिला कहानीकारों की कहानियाँ व्यक्तिगत बातचीत का लहज़ा अपनाती है। स्मृतियों में वह मँड़राती है। स्मृतियों की भाषा का सृजन यह आख्यानतंत्र गढ़ लेता है। महिला कहानीकारों की भाषा में भी एक प्रकार की स्मृतिजन्य एवं प्रतिक्रिया जन्य सूक्ष्मता मिलती है। इसका कारण यह है - अनुभव व्यक्त करना महिला कहानीकारों के आख्यानतंत्र का उद्देश्य नहीं है बल्कि अनुभव व्यक्त कराना उनका लक्ष्य है। इसलिए प्रत्येक कहानी उनका अनाख्यानतंत्र गढ़ती है और रचती है।

वर्तमान युग में स्त्री विभिन्न क्षेत्रों में अपनी पहचान बनी रही है। राजनीति, साहित्य, शिक्षा, विज्ञान, कला आदि क्षेत्रों में वह सक्रिय है। लेकिन यह प्रगति देश की औसत स्त्री की नहीं है। आज नगर-महानगर की स्त्रियाँ प्रगति की सीढ़ियाँ लाँघ रही हैं वहाँ गाँव की स्त्रियाँ

आज भी पूर्णतः शोषण से मुक्त नहीं हो पायी हैं। पिछड़े गाँवों में निरक्षरता, आर्थिक विवशता, रूढ़िवादिता आदि स्त्री की प्रगति में बाधक हैं। वहाँ स्त्री की ओर देखने का नज़रिया भी नहीं बदला है। वह पूरी निष्ठा से चारदीवारी में रहकर भारतीय परंपराओं का निर्वाह कर रही है। दूसरी ओर नगर में स्त्री पाश्चात्य अन्धानुकरण के पीछे बेतहाशा दौड़ लगा रही है अर्थात् समग्र भारतीय स्त्री जीवन में विषमता है। आशा रानी व्हौरा का कथन है कि - "स्त्रियाँ बेचारी तो चक्की के दोनों पाटों के बीच निरपराध पीस दी जाती है। यही कारण है कि जलाने-जलाने और मरने-मारने की घटनाएँ प्रायः शहरी उच्च वर्गों में अधिक होती हैं। लेकिन शहर हो या गाँव, इनके पीछे एक समान तथ्य होता है, दबे हुए वर्गों में अधिकार चेतना की जागृति, जिसे समाज के अपेक्षाकृत अधिक सुविधा प्राप्त वर्ग सहन नहीं कर पाते।"[1] कहने का तात्पर्य यह है कि सुविधा प्राप्त वर्ग दमित लोगों की माँग को हमेशा हटा देती है।

भारतीय नवजागरण के समानान्तर विकसित होनेवाले भारतीय साहित्य में भी स्त्रियों की दीन-दशा को दर्शाते हुए उनके उन्नयन का स्वर मुखरित होने लगा। रचनाओं में स्त्री-पुरुष समता को एक महत्वपूर्ण विषय के रूप में स्थापित कर दिया गया जिसका उत्तरोत्तर

---

1. आशा रानी व्होरा - स्त्री सरोकार - पृ. 85-86

विकास अनुमानित है। सामयिक यथार्थ बोध से जुड़े हिन्दी की कविता, कहानी, आदि विधाओं में स्त्री-समस्याओं का चित्रण व्यापक है। प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों में दहेज, बोमेल विवाह वेश्यावृत्ति जैसी समस्याओं के प्रति समाज की जड़ता पर कठोर प्रहार किया। पुरुष वर्चस्व से स्त्री की मुक्ति और उसके स्वतंत्र व्यक्तित्व के प्रतिपादन के कार्य प्रसाद, निराला, जैनेन्द्र, यशपाल, अज्ञेय आदि ने अपनी-अपनी कहानियों के माध्यम से किया तो महादेवी वर्मा ने अपने लेखों के माध्यम से।

महिला लेखन का आधुनिक दौर स्त्री अस्मिता की दिशा की सार्थकता को अवश्य दर्शाता है। भले ही महिला कहानिकारों की संख्या कम हो फिर भी पारंपरिकता का अंकन जहाँ उन्होंने किया है तो तनाव के साथ किया है। प्रतिरोध भी उनमें 'सूचित' संघर्ष सहित। यही इस दौर की स्त्री रचनाओं का दिशागामी संकेत है।

अध्याय : दो

समकालीन कहानी का महिला-लेखन सन्दर्भ

आज कहानी जितने व्यापक सरोकारों तथा बहुआयामी संदर्भों में लिखी जा रही है, उनमें स्त्री भी अपने लेखन से अपना सहभाग दे रही है और अपनी एक पहचान बना रही है। साहित्य के क्षेत्र में स्त्री का सहभाग नया नहीं है। आज उसकी सहभागिता 'स्त्री-अस्मिता' और 'स्त्री- स्वतंत्रता' को लेकर चल रही है। भारत के बदलते परिदृश्य में उनका साहित्य स्त्री की स्वतंत्रता, उनके वैचारिक विस्तार और नये संस्कार-संदर्भों को रेखांकित करता है। साहित्यिक क्षेत्र में महिलाओं की सर्जनात्मक प्रतिभा स्वातंत्र्योत्तर काल में ही तीव्रता के साथ उभरने लगी है। उसके पूर्व लेखन के क्षेत्र में स्त्री का योगदान विशेष उल्लेखनीय नहीं है। आज़ादी के बाद जागरण की नई चेतना की लहर चल पड़ी थी। उसने महिलाओं को आत्माविष्कार के नये संदर्भों से जोड़ दिया। कहानी विधा में भागीदारी देकर लेखिकाओं ने सबसे पहले अपने हीनतावबोध को नकारते हुए पुरुष के समकक्ष अपने को उपस्थित करने का कार्य किया। साहित्तिक क्षेत्र में पुरुष के वर्चस्व को चुनौती देती हुई आनेवाली इन महिलाओं ने अपनी मौलिक प्रतिभा के बल पर यह सिद्ध किया कि संवेदनात्मक स्थितियों की गहराई को आंकने में स्त्री पुरुष से कहीं आगे है। उनकी दृष्टि पुरुष

लेखकों की दृष्टि से नितान्त भिन्न रही है। यह अन्तर विषय चयन में ही नहीं, आविष्कार के ढ़ंग में, पात्रों के विधान में और संवेदना के स्तरों में भी पाया जाता है। "साहित्यकार का मूल धर्म है सृजन। सृजन के उत्स में जो पीड़ा और संवेदना है, जो अनुभूति और दृष्टि है, जो उल्लास और उन्मेष है, उनमें महिला और पुरुष साहित्यकार की समानता भी है और अन्तर भी। वे दोनों एक ही जीवन के भोक्ता हैं, फिर भी उनके हाशिए अलग है, उनकी व्याख्याओं का मर्म अलग है, उनकी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति अलग है क्योंकि कहीं कुछ है कि पुरुष और स्त्री एक होकर भी अलग है और अलग होकर भी एक है। अभिव्यक्ति की कई समस्याएँ और कई संकट सब साहित्यकारों के लिए समान हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं। किन्तु अभिव्यक्ति के कुछ पड़ाव और प्रतिबन्ध एवं कुछ अवरोध और अभियोग ऐसे है जो भारतीय महिला साहित्यकारों की अपनी विशेष विरासत हैं।"[1]

हिन्दी में लेखिकाएँ अपनी क्षमता के बलबूते पर अभिव्यक्ति के इस क्षेत्र में पूरी ईमानदारी के साथ प्रयत्नशील है। स्वातंत्र्योत्तर भारतीय मध्यवर्गीय स्त्रियों के जीवन को समग्र रूप से पकड़ने का प्रयास उन्होंने किया है। समाज का बृहद् परिदृश्य उनके सामने हैं। सांस्कृतिक संकट के की ज्वलंत पक्षों से वे जूझ रही हैं। नई भाषा

---

1. सं. दिनेश नन्दिनी ड़ालमिया, रश्मि मलहोत्रा - नये आयामों को तलाशती नारी - कमला सिंघवी - महिला साहित्यकार और अभिव्यक्ति का संकट (लेख) - पृ. 91

और नये रचनात्मक तेवर उनकी खूबी है। उनकी कहानियाँ सांस्कृतिक संकट की वविधायामी अभिव्यक्ति है।

समकालीन कहानी का महिला-लेखन

हिन्दी का महिला-लेखन समकालीन दौर में अधिकाधिक विकसित और प्रखर है। इसका दो कारण हैं। पहला है, पहचान की पारदर्शिता का विकास और दूसरा है, महिला-लेखन की सर्जनात्मकता का इतिहासबोध। एक ज़माने में जो महिला-लेखन हाशिए पर भी चर्चित नहीं था वह समकालीन दौर में केन्द्र में आता दिखाई देता है।

ममता कालिया

अन्य लेखिकाओं की अपेक्षा विषयचयन की दृष्टि से एक व्यापक दृष्टिकोण रखनेवाली लेखिका है ममता कालिया। वे लेखन के सीमित दायरे की पक्षधर नहीं है। उनका रचना-संसार परिवार की समाओं में न रहकर राजनीतिक विसंगतियों को भी चित्रित करता है। व्यंगयात्मकता उनकी भाषा की विशेषता है। उसके द्वारा वह भ्रष्टाचारों विद्रुपताओं पर दृष्टिपात करती जाती है। 'छुटकारा', 'एक अदत औरत', 'उसका यौवन', 'प्रतिदिन', 'सीट नं 6' आदि इनके कहानी संग्रह है, जबकि 'बेघर', 'नरक दर नरक' आदि इनके उपन्यास हैं। उन्होंने अपनी अधिकांश कहानियों में स्त्री के दुःख दर्द को ही उभारा है। पारिवारिक जीवन में स्त्री की निराशाओं, कुंठाओं, अन्धर्विरोधों,

असंगतियों का सजीव चित्रण इन्होंने किया है। स्त्री जीवन के विभिन्न आयामों को उन्होंने आधुनिक संदर्भ में प्रस्तुत किया है। 'राएवाली', 'अपनी', 'साथ' आदि कहानियों में पुरुष का स्त्री पर अत्याचारों का चित्रण है। 'उसका यौवन', 'दर्पण', 'मुहबत से खिलाइए' आदि उनकी श्रेष्ठ रचनाएँ है। अपनी रचनाओं में सिद्धान्तों से अधिक वे व्यावहारिक पक्ष पर ज़ोर देती है।

दीप्ति खण्ड़ेलवाल

इनकी प्रायः सभी रचनाएँ में पति-पत्नी के बदलते संबन्ध, बदलते परिवारिक परिवेश से संबन्धित है। 'वह तीसरा', 'कड़वे सच', 'धूप के अहसास', 'नारीमन' आदि इनके कहानी संग्रह हैं जबकि 'प्रिया', 'कोहरे' तथा 'प्रतिध्वनियाँ' उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। उनकी कहानियों में कई जगह ऐसी आधुनिक स्त्री का चित्रण है जो अपनी शरीर के भोग के लिए जीने की आकांक्षा रखती हैं। हमारे समाज में दाम्पत्य जीवन में अक्सर दरार पड़ जाते हैं। उसके कई कारण हैं, दीप्ति खण्ड़ेलवाल की तूलिका ने इस समस्या को उठाया है। आज दाम्पत्य जीवन में ऊष्मल स्नेह संबन्ध नहीं रहा है। अधिकांश पति-पत्नी समाज में मौजूद व्यवस्था के कारण अपने ऊपर पड़े बोझ के रूप में ही जीवन व्यतीत करता है।अकेलापन, अधूरापन, स्त्री जीवन की यंत्रणा, गरीबी, आदमियों की घुटन आदि को लेखिका ने

कहानियों का विषय बनाया है। समाज की सच्चाई को कलात्मकता के साथ चित्रित करने में लेखिका की अपनी अपूर्व क्षमता है। आज भी परिवार में पत्नी की हालत गुड़िया के बराबर है। संपन्न परिवार में भी स्त्री की हालत में कोई अंतर नहीं है। इस वास्तविकता को अभिव्यक्ति देनेवाली कहानियाँ है - 'धूप के अहसासी', और 'कड़वे सच'। 'दीप्ति खण्ड़ेलवाल की कहानियों की विशेषता है - "पाठकों के द्वारा अत्यन्त आत्मीयता के क्षणों में रचनात्मक अनुभव जगत से साक्षात्कार होना। फिर चाहे कहानी पति-पत्नी संबन्धों के विघटन की संवेदना का अनुभव कराए या आज के आर्थिक संकट से जूझते मनुष्य की विवशता से परिचित करे - पाठक एक सहज विश्वास से कहानी में व्यक्त स्थितियों का साक्षात्कार करता हुआ मानवीय त्रासदी का आस्वादक होता है। वह कहानी की एक-एक स्थिति को एक-एक भावखंड़ को भोगता हुआ पात्रों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण हो उठता है।"[1] संवेदनाओं की गहरी भावुकता से जुड़ी हुई उनकी लेखनी अभिव्यक्ति के स्तर पर इतना जोश दिखाती है कि समाज के सारे झूठे आदर्श सामने खड़े हो जाते हैं।

चित्रा मुद्‌गल

समकालीन हिन्दी महिला कथाकारों में चित्रा मुद्‌गल का अपना विशिष्ट स्थान है। आर्थिक दबावों का सीधा प्रभाव जिस तेज़ी

---

1. डॉ. विनय - समकालीन कहानी समान्तर कहानी (1977) - पृ. 37

से हमारे समाज पर पड़ रहा है उसे वैविध्यपूर्ण तथ्य एवं सघे हुए शिल्प के साथ उन्होंने अपनी कहानियों में उभारा है। उनके चार उपन्यास एवं नौ कहानी संग्रह हैं। 'अपनी वापसी', 'इस हमाम में', 'ज़हर ठहरा हुआ', 'लाक्षागृह', 'ग्यारह लंबी कहानियाँ', 'जगदम्बा बाबू गाँव आ रहे हैं', 'मामला आगे बढ़ेगा अभी' आदि इनके कहानी संग्रह हैं जबकि 'दौड़', 'एक ज़मीन अपनी' तथा 'आवाँ' तथा 'गिलिगडु' इनके उपन्यास हैं। 'सबक', 'जंगल का राज', 'नीति कथाएं' आदि बाल कहानियाँ है। साथ ही 'मेरी रचना यात्रा', 'तहखानों में बन्द आइनों के अक्स', 'असफल दाम्पत्य की कहानियाँ' आदि पुस्तकों का संपादन किया है। उनका पहला कहानी संग्रह है - 'ज़हर ठहरा हुआ'। पारिवारिक हलचल चित्रा मुद्गल की कहानियों का एक मुख्य विषय है। आधुनिक परिवार की समस्याओं को लेकर लिखीं गयी कहानी है 'अपनी वापसी'। हमारे संबन्धों के बीच हलचल पैदा करने में अर्थ की जो भूमिका है इसकी ओर इशारा करनेवाली कहानी है 'लिफाफा।' इसमें बहन कमाने लगती है और भाई बेकार है। कमानेवाली बहन का भाई के प्रति पूर्व स्नेह संबन्ध टूटता जाता है। 'शून्य', 'प्रेतयोनि' आदि चित्रा मुद्गल की श्रेष्ठ कहानियाँ हैं। स्त्रीत्व की क्षमता को उसके शरीर से ऊपर उठाकर स्वीकृति दिलाने का संकल्प इनकी कहानियों में है। स्त्री की प्रगति की राह में ज़्यादातर विषमताएँ उन्हें अपने परिवार की ओर से झेलनी पड़ती है। इस तथ्य की ओर लेखिका ने

पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है। "निम्नवर्ग में आर्थिक दबावों की जैसी संघर्षशीलता और शोषण से मुक्त होने की चाहत लिए नारी का संघर्ष जिस रूप में विवेचित - विश्लेषित होकर कहानियों में स्थान ग्रहण करता है, अपनी सहज संप्रेष्य भाषा के कारण पाठक को गहरे तक छू जाता है।"[1] अपने आसपास के परिवेश में बिखरी हुई घटनाओं की बहुत ही प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति चित्रा मुद्गल की कहानियों में प्राप्त होती है। इनकी कहानियाँ जीवन के कटु यथार्थ और त्रासद स्थिति के बीच से स्त्री की अस्मिता, स्वावलंबन, आत्माभिमान को गंभीरतापूर्वक मुखरित करती है और अपना विद्रोह प्रकट करती है।

मेहरुन्निसा परवेज़

मेहरुन्निस्सा परवेज़ एक ऐसी रचनाकार हैं जिनका एक अलग दृष्टिकोण है। समकालीन कहानी की सबसे बड़ी खूबी यह है कि वह सामाजिक यथार्थ से जुड़ी है। उनकी रचनाएँ इसको प्रमाणित करती है। 'आदम और हव्वा', 'गलत पुरुष', 'टहनियों पर धूप', 'फालगुनी', 'अंतिम सच्चाई', 'कोई नहीं', 'एक और सैलाब', 'अयोध्या से वापसी', 'आकाशनील', 'धूप के एहसास', 'बूँद का हक' आदि इनके कहानी संग्रह हैं जबकि 'आँखों की दहलीज', 'उसका घर', 'कोरजा', 'अकेला पलाश', 'पत्थर वाली गली' आदि उनके औपन्यासिक रचनाएँ हैं।

---

1. डॉ. रामकली सराफ - समकालीन हिन्दी कथा लेखिकाएँ - पृ. 19

इस्लाम संस्कृति के विभिन्न आयामों का बारीक चित्रण उनकी रचनाओं में मिलता है। भारतीय मुसलमानों की मानसिकता, रहन-सहन, खान-पान, आचार-विचार, धर्म-दर्शन, आदि की स्वानुभूत अभिव्यक्ति के साथ सुधार की भावना भी उनमें है। उनकी ज़्यादातर रचनाओं के पात्र एवं कथानक इस्लामिक संस्कृति से जुड़े हैं। निम्न मध्यवर्गीय जीवन को उन्होंने अपनी रचनाओं में प्रमुखता दी है।

मेहरुन्निसा परवेज़ 'बोल्ड़' पात्रों का चित्रण बड़ी खूबी से करती है। जैसे 'त्यौहार' नामक कहानी के केन्द्रीय पात्र को देखें। अभावग्रस्तता के बीच भी दूसरों के सामने हाथ न पसारने की संकल्पना जो है उसके चरित्र को ऊपर उठाती है। अपनी कहानियों में मेहरुन्निसा ने स्त्री जीवन की समस्याओं को प्रमुखता दी है। 'शनाख्त' एक ऐसी कहानी है जिसमें लेखिका ने स्त्री के व्यक्तित्व के दोनों पक्षों का चित्रण प्रस्तुत किया है। पुरुष के अधीशत्व को चुपचाप सहने की प्रवृत्ति अब भी स्त्री में है। अतः लेखिका यह व्यक्त करना चाहती है कि पुरुष वर्चस्व की भावना समाज से नहीं सबसे पहले हर एक स्त्री के मन से निकालना है। प्रस्तुत कहानी का स्त्री पात्र शुरू में एक गुड़िया सी दिखाई देती है। लेकिन कहानी के अन्त में वह खुद अपना विकल्प प्रकट करती है। यहाँ स्त्री की परिवर्तित मानसिकता का चित्रण मिलती है। 'चमड़े का खेल', 'उसका घर', 'अकेला गुलमोहर' आदि कहानियाँ

भिन्न-भिन्न पारिवारिक समस्याओं पर केन्द्रित हैं। निम्न मध्यवर्गीय जीवन की समस्याओं को वाणी देने में लेखिका बहुत सफल निकली है।

मृदुला गर्ग

समकालीन महिला लेखन में मृदुला गर्ग एक महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। उन्होंने उपन्यास, कहानी, नाटक जैसी विधाओं में अपनी सक्रिय भूमिका निभायी है। वे एक श्रेष्ठ अनुवादक भी हैं। उनकी रचनाएँ भारतीय भाषाओं में तथा अंग्रेज़ी, जर्मन, चेक आदि विदेशी भाषाओं में अनुवादित हुए हैं। 'कितनी कैदें', 'टुकड़ा टुकड़ा आदमी', 'डेफोड़िल जल रहे हैं', 'ग्लेशियर से', 'उर्फ सैम', 'समागम', 'शहर के नाम', 'दुनिया का कायदा', 'एक और अजनबी' आदि कहानी संग्रह तथा 'चित्तकोबरा', 'उसके हिस्से की धूप', 'वंशज', 'अनित्य', 'मैं और मैं', 'कतार से बाहर', 'कठगुलाब' आदि उपन्यास शामिल हैं। उन्होंने अपनी कथा साहित्य में स्त्री के प्रेम और वासनात्मक जीवन को ही प्रमुखता दी है।

मृदुला गर्ग की लेखकीय समग्रता का आधार मुख्यतः उनकी काव्यात्मकता पर आधारित है। उनकी अधिकांश कहानियाँ यौन संबन्धों को लेकर लिखी गयी हैं। 'कितनी कैदें', 'अवकाश' आदि में सेक्स के जटिल संबन्धों को आधार बनाया गया है। 'कितनी कैदें' कहानी में ऐसी एक माँ का चित्रण हुआ है जो अपनी बेटी को इसलिए कॉलेज

भेजती है ताकि वह किसी लड़के को फँसाकर शादी करें। उसकी यह मानसिकता बेटी के पूरे जीवन को बड़ी त्रासद बना देती है। लड़की को, अपने ऊपर पड़ी भारी उत्तरदायित्व एवं पुरुष को आकर्षित करने की चीज़ के रूप में माननेवाले सामाजिक वातावरण का अंकन इसमें है। अपने अस्तित्व की खोज में निकली स्त्री का चित्रण भी मृदुला गर्ग की कहानियों में है। 'हरी बन्दी' की नायिका हर नारी के मन में छिपी स्वतंत्रता की चाह को व्यक्त करती है। पति की अनुपस्थिति में उसके सीमित दायरों से बाहर निकलने की पत्नी की जो उत्कट आकांक्षा है वह इस कहानी में साफ प्रतिफलित है।

उच्चवर्ग और निम्नवर्ग के बीच का संघर्ष बढ़ी प्रभावी पूर्ण ढ़ग से उन्होंने व्यक्त किया है। निम्नवर्ग की निष्कलंकता और भोलेपन को उजागर करनेवाली कहानी है 'टुकड़ा-टुकड़ा आदमी।' सर्वहारा वर्ग के प्रति उच्चवर्ग के हृदयहीन व्यवहार का संवेदनात्मक अभिव्यक्ति है 'मौत में मदद'। इसमें निम्नवर्ग की विवशता को गहरी आत्मीयता से उभारा गया है। साहब और मेमसाहब के एक खिलौना बनकर अपने अस्तित्व को खोनेवाले नौकर का चित्रण हमें 'उसका विद्रोह' शीर्षक कहानी में मिलता है। इसमें उच्चवर्ग की दमन-नीति के साथ-साथ सर्वहारा वर्ग के संघर्ष को भी प्रस्तुत किया गया है। मृदुला गर्ग की रचनाचक्र में विषयों की बहुलता है। विषयचयन और प्रस्तुतीकरण में भी मृदुला गर्ग तो अपनी खूबी साफ दिखाई देती है।

नासिरा शर्मा

नासिरा शर्मा ने अपनी कहानियों के द्वारा मानव जीवन में व्याप्त अकेलापन, घुटन, इनसान के दिल और दिमाग की टकराहट आदि को अभिव्यक्ति दी है। इनसान को इनसान की तरह जीने में बाधा उपस्थित करनेवाले तथ्यों को लेखिका ने अपनी कहानियों में उभारा है। 'इन्सानी नस्ल', 'पत्थर गली', 'सबीना के चालीस चोर' आदि इनके कहानी संग्रह हैं, जबकि 'सात नदियाँ एक समन्दर', 'ज़िन्दा मुहावरे', 'ठीकरे की मंगनी', 'शाल्मली' आदि उनके उपन्यास हैं। उनकी अधिकांश कहानियाँ इस्लामी संस्कृति और रीति-रिवाज़ों के चित्रण से भरी हुई है। 'इन्सानी नस्ल' में जीवन की सादगी में पनपते रिश्तों को चित्रित किया गया है। 'असली बात' नामक कहानी में इनसान को एक दूसरे से अलग करनेवाली सांप्रदायिकता के दुष्परिणामों की ओर इशारा किया गया है। 'अपराधी' में एक ऐसे फौजदारी का चित्रण किया है जो इस दुनिया के भ्रष्टाचारों से अनभिज्ञ है और न किसी अपराध में हाथ लगाता है। लेकिन अवकाश प्राप्ति के पश्चात् जब उन्हें संसार की असली हालत का परिचय होता है तब वह आवाक् रह जाता है। वर्तमान समाज का सही रूप इसमें स्पष्ट अंकित है। 'अबै-तौबा' मनोवैज्ञानिक धरातल पर लिखी गयी कहानी है। लेखिका ने इनसान को सही परिप्रेक्ष्य में रखकर विचार-विमर्श किया है। उनकी कहानियों के संबन्ध में एक प्रतिक्रिया इस प्रकार है - "भिन्न

समाज के भिन्न पात्र होते हुए भी समाज और पात्र जाने पहचाने लगते हैं।"[1] इन्होंने स्त्री जवन की विषमताओं का बहुत ठीक-ठाक चित्रण प्रस्तुत किया है।

नासिरा शर्मा एक सफल उपन्यासकार भी है। उनका बहुचर्चित उपन्यास है 'ज़िन्दा मुहावरे।' यह भारत-पाकिस्तान विभाजन को परिप्रेक्ष्य में रखकर लिखा गया उपन्यास है। इसका वस्तुपक्ष विभाजन से पीड़ित व्यक्तियों पर केन्द्रित है। ईरानी जनता के जीवन परिवेश पर आधारित उपन्यास है 'सात नदियाँ एक समन्दर'। नासिरा शर्मा का रचना-संसार किसी वाद या विमर्श में बाँधा नहीं है। समकालीन महिला कहानीकारों में उनकी खास पहचान है।

सूर्यबाला

समकालीन लेखिकाओं में विषय की विविधता से संपन्न लेखन की अधिकारिणी है सूर्यबाला। सूर्यबाला अपनी व्यंग्यात्मक प्रस्तुतीकरण के कारण प्रसिद्ध रही है। 'एक इन्द्रधनुष जुबेदा के नाम', 'दिशाहीन', 'मैं मुंड़ेर पर', 'मरियल तीतर' आदि उनके कहानी-संग्रह हैं जबकि 'सुबह के इन्तज़ार तक', 'मेरे संधि पत्र', 'अग्निपंखी', 'दीक्षान्त', 'यामिनी कथा' आदि उनके उपन्यास है। 'कुछ अदद ज़ाहिलों के साथ' उनका प्रसिद्ध व्यंग्य संग्रह है। सूर्यबाला, संबन्धों एवं रिश्तों के

---

1. ब्रह्मस्वरूप शर्मा - आधुनिक हिन्दी साहित्य (1996) - पृ. 104

खोखलेपन का सटीक वर्णन करने में दक्ष रचनाकार हैं। संबन्धों के बीच की टूटन में स्वार्थपरायणता का जो स्थान है उस पर लेखिका ने ज़ोर दिया है। उनका सृजन क्षेत्र घर-परिवार तक सीमित नहीं है। उन्होंने स्त्री पात्रों का चित्रण बड़ी सूक्ष्म एवं सटीक ढंग से किया है। जीवन के हर क्षण में समझौता करने के लिए बाध्य स्त्री पात्रों का चित्रण हो उन्होंने मुख्यतः किया है। 'आदमकद' नामक कहानी का पात्र ऐसी एक विषय से उद्‌भूत है। 'एक इन्द्रधनुष ज़ुबेदा के नाम' में एक मुस्लिम परिवार की अवसरवादी एवं एक चतुर व्यक्ति की हृदयहीनता का चित्र खींचा गया है। अपनी पदोन्नति के लिए पत्नी को भूल जानेवाले निष्ठूर पति का चित्रण 'दरारें', 'रेख' आदि में देख सकते हैं। बालमन के भोलापन का चित्रण हो या स्त्री मन के दर्द की अभिव्यक्ति हो बड़ी सूक्ष्मता से चित्रित करने में सूर्यबाला की तूलिका सार्थक साबित हुई है।

राजी सेठ

राजी सेठ के बारे में इन्द्रनाथ मदान का कथन है "राजीसेठ ने अपनी पूर्ववर्ती महिला कहानीकारों की देन को विरासत में पाया है और कहानी को अगर नया मोड़ नहीं दिया है तो इसमें ताज़गी का संचार अवश्य किया है।"[1] मन्नू भण्ड़ारी, उषा प्रियंवदा, कृष्णा सोबती

---

1. आलोचना (पत्रिका) राजीसेठ की कहानी : व्यक्ति मन की कहानी (लेख) इन्द्रनाथ मदान (जुलाई-सितंबर 1981) - पृ. 84

आदि महिला कहानीकारों की विशिष्टताओं को मानकर ही राजी सेठ ने रचना की है। उनकी कहानी कला की श्रेष्ठता का परिचय करनेवाला कहानी संग्रह है 'अन्धे मोड़ से आगे'। समान्तर चलती दो पीढ़ियों का काव्यात्मक चित्रण है 'समान्तर चलते हुए' शीर्षक कहानी। बूढ़ापन लोगों को जिस प्रकार परिवार के दायरे में सीमित कर देता है और बुजुर्ग लोगों की मानसिक विशेषताएँ जो है उन पर प्रकाश डालनेवाली कहानी है 'उसका आकाश'। 'अस्तित्व से बड़ा', 'एक यात्रान्त', पुनः वही 'अन्तहीन' आदि इस संग्रह की अन्य कहानियाँ हैं। राजीसेठ का रचना-संसार में विषयवस्तु की विविधता देखी जा सकती है। 'एक बड़ी घटना', 'अनावृत कौन' आदि कहानियों में संबन्धों के ह्रास हो जाने की अभिव्यक्ति हुई है। राजीसेठ ने अपनी कहानियों में व्यक्ति-मन को ही प्रमुखता दी है। इन्द्रनाथ मदान ने उनकी कहानी को व्यक्ति मन की कहानी कही है। आलोचक रमेश दुबे के शब्दों में "राजी सेठ की एक विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि वे कथा को एक पेंटिंग की तरह बनाती है। रंगों का जो संयोजन वे करती हैं, उससे उनकी कृति का जो संयोजन वे करती हैं, उससे उनकी कृति को एक ऐसे केनवास के रूप में देखा जा सकता है, जिस पर स्मृतियों, अनुभवों और विचारों के यदि कोलाज हैं, तो उस केनवास की मूल ग्रउण्ड या ज़मीन उनके कलात्मक बिम्बों से रची गयी है।"[1] वस्तुपक्ष एवं शिल्प पक्ष दोनों दृष्टियों से एक श्रेष्ठ कथाकार है राजी सेठ।

---

1. माध्यम (पत्रिका) (अप्रेल-जून 2004) राजीसेठ की कथा कृतियों का संवेदना संसार (लेख) रमेश दुबे - पृ. 26-41

सिम्मी हर्षिता

सिम्मी हर्षिता हिन्दी साहित्य के प्रमुख हस्ताक्षरों में से है। 'धाराशायी', 'कमरे में बन्द आवाज़', 'बनजारन हवा' आदि उनके कहानी संग्रह तथा 'संबन्धों के किनारे' और 'यातना शिविर' उनके उपन्यास हैं। बदलती सामाजिक परिस्थितियाँ और उससे उद्‌भूत मानवीय संकटों का यथार्थ चित्रण लेखिका ने किया है। उनकी कहानियाँ मुख्यतः स्त्री विमर्श की कहानियाँ है जो भारतीयता से ही ओतप्रोत है। उनकी कहानियाँ स्त्री विमर्श के कई अछूते पहलुओं का स्पर्श करती है। जब स्त्री ने अर्थोत्पादन में अपनी सक्रिय भागीदारी निभाना शुरू की, वहीं से नारी विमर्श का एक नया द्वार खुला। आज पुरुष आर्थिक अभावों की पूर्ति के लिए स्त्री को माध्यम बनाने में संकोच नहीं करता है। 'इस तरह की बातें' शीर्षक कहानी की मिसिज़ बिके और उनकी बेटी इस समस्या को विस्तार देती है। 'धाराशायी 'आपकी मेहरबानी' आदि भी उनकी श्रेष्ठ कहानियाँ हैं।

कृष्णा अग्निहोत्री

भारतीय मूल्यों के प्रति आस्था रखनेवाली लेखिका है कृष्णा अग्निहोत्री। 'विरासत', 'पंछी बिंजड़े के', 'नपुंसक', 'ज़िन्दा आदमी' आदि उनके कहानी संग्रह हैं 'एक बात एक औरत की', 'बौनी परछाइयाँ', 'कुमारिकाएँ', 'टेसू की टहनियाँ' उनकी प्रसिद्ध औपन्यासिक

कृतियाँ है। 'स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी नाम से एक समीक्षा ग्रन्थ उन्होंने लिखा है और 'आधा आदमी' नाम से एक नाटक भी। 'लगता नहीं है दिल मेरा' उनकी आत्मकथा है। आधुनिकता बोध से युक्त लेकिन परंपरा को माननेवाली स्त्री का चित्रण ही उन्होंने अपनी रचनाओं में किया है। दिनेश द्विवेदी का कहना है कि "कृष्णाजी (अग्निहोत्री) ने स्त्री को न तो देवी माना है न दानवी ही। उनकी नज़र में औरत सिर्फ औरत है, जो कि भावुकता की हद तक भावुक है और उत्तरदायित्व की सीमा तक कर्तव्यपरायण। स्त्री यदि कहीं समर्पित भी हुई है तो इसी वजह से और स्वाभिमान से तृप्त भी हुई भी इसी वजह है।"[1] उन्होंने स्त्री को देवी और भोग्य से परे सिर्फ स्त्री माना है और एक स्त्री के मानव होने के नाते सारे मानवीय अधिकार सुलभ कराने की आवश्यकता अपने साहित्य कर्म के माध्यम से जतायी है।

नमिता सिंह

"महिला कथाकारों पर यह आरोप लगाया जाता है कि वे घर-परिवार, प्रेम-टूटन आदि की कहानियाँ ही लिखती रही हैं। और यह उनकी सामर्थ्य सीमा है। इस आरोप को नमिता सिंह का लेखन बेबुनियाद सिद्ध करता है। महिला दायरों से बाहर आकर नमिता सिंह ने निम्न मध्यवर्गीय आदमी के संघर्ष से अपने को प्रतिबद्ध किया है।

---

1. सं. दिनेश द्विवेदी - चर्चित महिला कथाकारों की कहानियाँ - पृ. 9

और प्रगतिशील वैज्ञानिक मानवतावादी विश्व दृष्टि की कहानियाँ लिखकर अपनी विशिष्ट पहचान बनाती है।"[1] उन्होंने अपने पात्रों के माध्यम से समाज के विभिन्न वर्गों के चरित्रों को उभारने का प्रयास किया है। 'खुले आकाश के नीचे', 'राजा का चौक, नील गाय की आँखें, संभल गाथा, निकम्मा लड़का आदि उनके कहानी संग्रह हैं तथा 'अपनी सलीबें' नाम से एक उपन्यासा भी है। अनावश्यक रूढ़ियाँ, संस्कार, जातिवाद, सांप्रदायिकता आदि के विरुद्ध आवाज़ उठानेवाले पात्रों का सृजन उन्होंने किया है। नमिता सिंह ने अपने कथा-साहित्य में स्त्री विरोधी रूढिग्रस्त मानसिकता पर प्रश्नचिह्न ड़ाला है। भविष्य के प्रति आस्थावान दृष्टिकोण उनकी रचनाओं में है जो पाठकीय मन पर प्रभाव ड़ालने में सक्षम है।

मृणाल पाण्ड़े

स्त्री अस्मिता के लिए अपनी कलम से संघर्ष करनेवालों में अग्रणी है मृणाल पाण्डे। उन्होंने स्त्री स्वातंत्र्य के प्रश्न को बड़ी सूक्ष्मता से रेखांकित किया है। वे सुप्रसिद्ध लेखिका शिवानी की पुत्रि है। अतः शिवानी का प्रभाव उनपर स्पष्ट है। 'दरम्यान', 'शब्द-बेधी', 'एक नीच ट्राजड़ी', 'एक स्त्री का विदागीत', 'यानी की एक बात थी', 'चार दिन की जवानी तेरी', आदि उनके कहानी संग्रह हैं, जबकि

---

1. डॉ. किरण बाला - समकालीन कहानी और समाजवादी चेतना - पृ. 75-76

'विरुद्धा' और 'पटरंगपुर पुराण' उनके उपन्यास हैं। कहानी और उपन्यास के अलावा वह एक नामी नाटककार है। 'मौजूदा हालत को देखते हुए','जो राम रचि राख', 'आदमी जो मछुआरा नहीं था', 'चोर निकल के भागा', 'काजर की कोठरी' आदि उनके नाटक हैं। 'द डॉटर्स डॉटर' इनके अंग्रेज़ी उपन्यास तथा 'द सब्जेक्ट इज विमेन' महिला विषयक लेखों का संकलन है। इसके साथ 'परिधि पर स्त्री' नाम से स्त्री विषयक लेखों का संकलन भी है। "एक खास और नये किस्म के तेवरों से गढ़ा संवारा हुआ लेखन है सुश्री मृणाल पाण्डे का। मृणालजी की गहरी और बौद्धिक पकड़ है अपने कथानकों और पात्रों के साथ। ...कथाकार के साथ-साथ मृणालजी एक समीक्षक भी है। अतः उनकी चौकन्नी और सतेज अन्तर्दृष्टि ज़रा भी ड़गमगाती नहीं है। यही वजह है कि मृणालजी का लेखन लीक से हटकर पड़ता है।"[1] समाज में आर्थिक तौर पर स्त्री-पुरुष के बीच जो खाई है उसे पाटने का कार्य किया है। व्यक्तिमन में व्याप्त खोखलेपन और आड़ंबर प्रियता का चित्रण कर उन पर करार व्यंग्य उन्होंने किया है।

सुधा अरोड़ा

सुधा अरोड़ा की रचनाओं में सामाजिक जागरण की प्रस्तुति हुई है। इन्होंने अपनी कहानियों में नये जीवन परिवेश को चित्रित किया

---

1. डॉ. दिनेश द्विवेदी - महिला कथाकारों की कहानियाँ - पृ. 10

है और घर-परिवार से बाहर समाज के बृहत्तर जीवन यथार्थ को ही वस्तु धरातल पर स्वीकारा है। "उनकी (सुधा की) कहानियाँ एक चित्र हैं, माध्यम हैं हमारी नृशंसता का, हमारे विश्वासघातों का, हमारे असत्य मुखौटों और घृणित कर्मों का। उनमें आक्रोश नहीं एक पैनापन है। परिवर्तन की एक अकुलाहट है, विसंगतियों पर प्रहार करने की बेबसी है। सामाजिक सोद्देश्यता सुधा में सूक्ष्म से सूक्ष्मतर हुई है।"[1] लेखिका ने अपनी अनुभव-संपन्नता से अपने सृजन क्षेत्र को भराया है। सृजन-वैभव एवं गहन अनुभूति के माध्यम से उन्होंने समाज के मूल्यशोषण, टूटते-बिखरते संबन्धों, अकेलापन आदि का चित्रण किया है। 'बगैर तराशे हुए', 'कमज़ोर', 'युद्ध विराम', आदि इनके कहानी-संग्रह हैं जबकि 'पानी की ज़मीन' इनकी औपन्यासिक कृति है। सुधा अरोड़ा के स्त्री पात्र परंपरा के प्रति आस्था रखनेवाले नहीं हैं। उनके सामने सबसे बड़ी समस्या वर्तमान के प्रति समझौते की बात ही है। "सुधा अरोड़ा की कहानियों में आधुनिक नारी का आन्तरिक द्वन्द्व चित्रित है। उनके नारी-पात्र परंपरा के प्रति आस्था रखते हुए नहीं दिखाई देते।"[2] 'खलनायक', 'एक सेंटिमेंटल ड़ायरी की मौत', 'बगैर तराशे हुए', 'युद्ध विराम', 'तानाशाही' आदि उनकी प्रसिद्ध कहानियां हैं।

---

1. डॉ. सुरेश सिन्हा - हिन्दी कहानी उद्‌भव और विकास - पृ. 18
2. डॉ. संतबख्श सिंह - नई कहानी : कथ्य और शिल्प - पृ. 227

मालती जोशी

"मालती जोशी का जीवन के प्रति दृष्टिकोण आस्थावादी है। नारी मन की तह तक उतरीा लेखिका ने पारिवारिक जीवन में व्याप्त विभिन्न समस्याओं को सहजता से प्रस्तुत किया है। बदलते परिवेश में भी पारंपरिक मूल्यों, नैतिकता, विवाह, धर्म, संस्कृति आदि के प्रति इनका लगाव गहरा है जिसके मूल में जीवन को संतुलित देखने की चाहत है। केवल आधुनिकता के प्रवाह में बहकर अपनी सांस्कृतिक विरासत को नकारना उचित नहीं।"[1] उन्होंने अपनी रचनाओं में पारिवारिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विघटन को भिन्न-भिन्न मायनों में चित्रित किया है। उनके स्त्री पात्र पारंपरिक मूल्यों में जकड़े हए दृष्टिगत होते हैं। आधुनिक युग में स्त्री की दोहरी भूमिका को सामने लाने का पहल उन्होंने की है। स्त्री जीवन के हर एक पहलु पर उन्होंने अपनी लेखनी चलायी है। "मध्यांतर', 'समर्पण का सुख', 'दादी की घड़ी', 'जीने की राह', 'राग-विराग', 'शोभा यात्रा', 'एक घर सपनों का', 'पटाक्षेप', 'पराजय' आदि उनके कहानी संग्रह हैं जबकि 'सहचारिणी', 'पाषाण युग' आदि औपन्यासिक कृतियाँ हैं। बाल साहित्य के क्षेत्र में भी उन्होंने अपनी रचनाधर्मिता का परिचय दिया है। "मालती जोशी का क्षेत्र सीमित है। उनकी कहानियाँ अधिकतर पारिवारिक जीवन पर

---

1. डॉ. रामकली सराफ - समकालीन हिन्दी कथा लेखिकाएँ - पृ. 14

ही लिखी हुई हैं, लेकिन उस सीमित क्षेत्र में ही लेखिका ने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। गहरी अनुभूति और नई जीवन दृष्टि के कारण आधुनिक परिवेश में नारी का अन्तर्द्वन्द्व, संत्रास, पुटन और मध्यवर्गीय जीवन को चित्रित करने में इन्हें विश्ष सफलता प्राप्त हुई है। मालती जी को नारी मन के सूक्ष्म स्पंदनों की सही पहचान है, इसमें संदेह नहीं।"[1]

मैत्रेयी पुष्पा

कहानी एवं उपन्यास दोनों विधाओं में समान रूप से ख्याति प्राप्त लेखिका है मैत्रेयी पुष्पा। 'चिन्हार', 'ललमनियाँ', 'गोमा हँसती है', इनके कहानी संग्रह है जबकि 'स्मृति दंश', 'इदन्नमम', 'चाक', 'बेतवा बहती रही', 'अल्मा कबूतरी' आदि इनके ख्याति प्राप्त औपन्यासिक कृतियाँ है। ग्रामीण परिवेशों का सहज एवं सुन्दर चित्रण लेखिका की अपनी विशेषता है। शहरीकरण के इस दौर में ग्रामीण नैसर्गिकता को कायम रखने की कोशिश उनकी रचनाओं में हैं। ग्रामण समाज के यथार्थ को चित्रित करने में मैत्रेयी पुष्पा अग्रणी हैं।

समकालीन कथा साहित्य में कथा लेखिका एवं अनुवादक दोनों दृष्टियों से महत्वपूर्ण स्थान के अधिकारिणी है प्रभा खेतान। सीमीन द बुआ की प्रसिद्ध पुस्तक 'द सेकेंड़ सेक्स' का अनुवाद

---

1. सुमन कुमार 'सुमन' - कहानी और कहानीकार (1989) - पृ. 157

उन्होंने किया है। कृष्णा सोबती के बाद बोल्ड़ नारी पात्रों का सृजन प्रभा खेतान द्वारा हुआ है। 'छिन्नमस्ता' की प्रिया इस प्रकार की एक बोल्ड़ पात्र है। 'द सेकेंड़ सेक्स' का अनुवाद करके प्रभाजी इस बात पर ज़ोर देती है कि स्त्री को सबसे पहले आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबी होना चाहिए, वही से उसके स्वातंत्र्य की शुरुआत होती है। 'छिन्नमस्ता', 'तालाबन्दी', 'आओ पेपे घर चलें' आदि उपन्यासों के अतिरिक्त सार्त्र और कामू पर चिन्तन कार्य भी उन्होंने किया है।

समकालीन साहित्य जगत में ख्याति प्राप्त लेखिका है शशिप्रभा शास्त्री। उन्होंने अपनी रचनाओं में पारंपरिक अनाचारों के प्रति विरोध प्रकट किया है। साथ ही आधुनिकता के गुण एवं अवगुणों का उद्‌घाटन भी किया। 'भूली हुई शाम', 'दो महायुद्धों के बीच', 'अनुत्तरित' आदि इनके कहानी संग्रह हैं एवं 'हर दिन इतिहास', 'क्योंकि', 'उम्र एक गलियारे की' आदि इनके उपन्यास है।

कुसुम अंसल का हिन्दी लेखिकाओं में विशिष्ट स्थान है। इन्होंने मुखयतः उच्च अभिजात्य वर्गों की मानसिकता को ही चित्रित किया है। उन्होंने कथा साहित्य के साथ काव्य क्षेत्र में भी अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। 'स्पीड़ ब्रेकर', 'पत्ते बदलते है' आदि कहानी संग्रह हैं और 'अपनी-अपनी यात्रा', 'उदास आँखें', 'नींव का पत्थर', 'एक और पंचवटी', 'उस तक', 'रेखाकृति' आदि उनके उपन्यास हैं।

'मौन का दो पल', 'घुएं का सच', 'विरुद्धीकरण' आदि काव्य संग्रह भी प्रकाशित हुए है।

मृदुला सिन्हा अपनी एक अलग पहचान रखनेवाली लेखिका है। उन्होंने केवल साहित्यिक क्षेत्र में न सीमित रहकर सामाजिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में भी अपनी क्षमता का परिचय दिया है। उन्होंने भारतीयता को लोक संस्कृति के साथ रखकर विचिंतन करने का प्रयास किया है। लोकजीवन में स्त्री की हालत जो है उस पर लेखिका ने ध्यान दिया है। 'साक्षात्कार', 'एक दिये की दीवाली' कहानी संग्रह हैं, 'नयी देवयानी', 'घरवास' आदि उपन्यास है, साथ ही 'आइने के सामने', 'मानसी के नाते', आदि निबन्ध संग्रह हैं। उन्होंने प्रायः सभी विधाओं में काम किया है।

एक और सशक्त लेखिका है निरुपमा सेवती। समाज में कामकाजी स्त्री की दोहरी भूमिका पर इन्होंने बखुबी लिखा है। 'आतंक बीज', 'खामोशी' को पीते हुए', 'काले खरगोश', 'कच्चा मकान', 'भीड़ में गुम' आदि इनके कहानी संग्रह है जबकी 'पतझड़ की आवाजें', 'बँटता हुआ आदमी', 'मेरा नरक अपना है' आदि उनके उपन्यास है।

हिन्दी की नामी लेखिका है मंजुल भगत। इन्होंने अपनी लेखनी दीन-दुःखियों, दलितों, उत्पीड़ितों एवं बिछड़ें हुए लोगों की

संवेदना को उभारने के लिए चलाई है। उन्होंने अपने देश के सांस्कृतिक मूल्यों को कायम रखने की कोशिश की है। 'गुलमोहर के गुच्छे', 'सफेद कौवा', 'आत्महत्या के पहले' आदि इनके कहानी संग्रह है। 'बेगाने घर में', 'लेड़ीज़ क्लब', 'इन्द्रधनुष' आदि उनके औपन्यासिक कृतियाँ है।

उपर्युक्त लेखिकाओं के अलावा समकालीन सृजनात्मकता के अन्तर्गत मधु कांकरिया, किसलय पंचोली, ऊर्मिला शिरीष, जया जादवानी, उषा महाजन, सुनीता जैन, रमा सिंह, चन्द्रकान्ता, नीरजा माधव आदि के नाम भी विशेष उल्लेखनीय हैं।

समकालीन महिला-लेखन का विषय परिदृश्य

समकालीन महिला लेखन समकालीन समाज की ही उपज है। समकालीन लेखिकाओं ने अपने अनुभव क्षेत्र से ऐसी कहानियाँ लिखी हैं, जिनमें समाज की दोहरी मानसिकता का पर्दाफाश, स्त्री-सन्दर्भों को घर-परिवार, समाज के बीच रखकर उसकी भिन्न स्थितियाँ, एवं दुःख दर्द का चित्रण, घर-परिवार से बाहर निकलकर कार्य करनेवाली स्त्री की दोहरी भूमिका का यथार्थ अंकन, आधुनिक युग में स्त्री-पुरुष संबन्धों में आये बदलाव का सूक्ष्मता से प्रस्तुति एवं मानवीय रागात्मकता और संबन्धों के बिखराव से उत्पन्न सूनापन आदि का चित्रण उपलब्ध है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ भारत में सामाजिक परिवर्तन हुआ। इस बदलते परिवेश का प्रभाव महिला जगत पर पड़ा है। इन कहानीकारों

ने सामाजिक चुनौतियों को बड़ी गंभीरता से समझा है और उनकी अभिव्यक्ति अपनी कहानियों में बड़ी कुशलता से की है। ये समस्याएँ वैयक्तिक भी हैं और सामाजिक भी। सामाजिक स्तर पर लेखिकाओं ने प्रायः परिवार को चुन लिया है। संयुक्त परिवार का टूटन, दाम्पत्य संबन्धों का ह्रास आदि मुख्यतः उनका विषय बना। मेहरुन्निसा परवेज़, मन्नू भण्ड़ारी, मालती जोशी आदि अधिकांश लेखिकाओं ने इन्हीं विषयों की चर्चा की है।

रूढ़िबद्ध विचारों पर लेखिकाओं ने तीखा व्यंग्य प्रस्तुत किया है। भारतीय संस्कृति में विवाह का अपना महत्व है। लेकिन आजकल की परिस्थितियों में वैवाहिक संस्था में भी विसंगतियाँ पैदा हो गयी है। विवाह के बीच की समस्याओं को इन लेखिकाओं ने संवेदना के स्तर पर समझने का प्रयास किया है। उनकी मान्यता है कि शोषित स्त्री की द्वन्द्वों के पीछे कुछ अंश तक आज की विवाह-संस्था ज़िम्मेदार रही है। समाज को संतुलित रूप से चलाने हेतु, नैतिक मान्यताओं को बनाये रखने के लिए विवाह एक अनिवार्य तथ्य साबित होता है। दहेज प्रथा, कुरूपता, जातिव्यवस्था, उच्चशिक्षा आदि कई बातें लड़की के सामने वैवाहिक समस्या बनकर आती है। कभी अर्थाभाव के कारण विवाह की समस्या जटिल होती रही है। विवाह की सौदेबाजी से अधिकांश स्त्रियों को गुज़रना पड़ता है। कई बार इस सौदेबाजी में नकारी जाती है। शिक्षित लोग भी अपने व्यक्तिगत जीवन में सड़ी गली परंपराओं से

चिपके रहते हैं। परंपरागत दमन चक्र से तो वे मुक्त नहीं हैं। उन पर नये उपभोक्तावादी संस्कृति ने अपना जाल फँसा दिया है। इसी वजह से स्त्री भोग्या रूप में ही टिकी रहती है। इसीलिए महिला कथाकारों ने मुख्यतः नारी को ऐसी पाशवीय जाल से मुक्त कराने का प्रयास किया है। जब महिला कथाकार स्त्री जीवन को विषयवस्तु बना लेती है तब वह उसका एक विशेष क्षेत्र भी हो जाता है। उसके दो रूप हो सकते हैं। एक है, सामान्य ढ़ग से स्त्री समस्याओं पर प्रकाश ड़ालना। ऐसी रचनाएँ सामान्य हुआ करती हैं। दूसरा है, जहाँ स्त्री जीवन अपनी तमाम विड़ंबनाओं के साथ प्रस्तुत होता है।

समकालीन महिला लेखन में स्त्री मन का द्वन्द्व, यौन वर्जनाओं को नकारने के साथ दैहिक और काम संबन्धों की खुली स्वीकृति, दाम्पत्य संबन्धों का आन्तरिक सूनापन, विवाहपूर्व एवं विवाहेतर यौन संबन्धों की वकालत, विवाह और प्रेम के वास्तविक सरोकारों की तलाश, कामकाजी स्त्री की दोहरी भूमिका आदि प्रश्नों को बड़ी सूक्ष्मता से उकेरा गया है। प्रायः सभी लेखिकाओं ने समाज में व्याप्त लिंग भेदी मानसिकता और व्यवहार को लेकर कहानियाँ लिखी है। यदि किसी के लेखन में इसके विरुद्ध गहरा प्रहार है तो किसी में इसे महज उजागर करने की कोशिश देख सकते हैं। दाम्पत्य में आये दोहरेपन का प्रस्तुतीकरण है नासरी शर्मा कृत 'बावली' नामक कहानी। कृष्णा अग्निहोत्री की 'गलियारें', सिम्मी हर्षिता की 'उसका मन',

'मणिका मोहिनी का 'पारू ने कहा था' आदि कहानियाँ इसी श्रेणी में आती हैं। दाम्पत्य जीवन में सहभागिता एवं एकता की नींव ड़ालना है लेकिन दोहरी नैतिकता की नींव ही वहाँ कायम है। आज भी दाम्पत्य जीवन में पत्नी की इच्छा-आकांक्षाओं का कोई महत्व नही है। स्त्री की इस घुटन भरी ज़िन्दगी को लेखिकाओं ने अपनी कहानियों में वाणी दी है। जहाँ पत्नी की मृत्यु के बाद पुरुष का पुनर्विवाह दुनिया के कायदे के अनुसार संपन्न होता है, उसी समाज में एक विधवा के लिए पुनर्विवाह अनैतिक सिद्ध होता है। इस दोहरी व्यवस्था की प्रस्तुति सशक्त रूप में मृदुला गर्ग ने अपनी कहानी 'दुनिया का कायदा' में किया है।

पुरुष सत्तात्मक मूल्यों और व्यवस्था को तोड़ना ही महिला लेखन का मूल उद्देश्य रहा है जो कार्य कथा लेखिकाओं ने बखूबी किया भी है। दाम्पत्य जीवन के उन अनछुए पहलुओं की ओर ध्यान आकृष्ट कराने का कार्य की है जो आम तौर पर स्त्री के मन, भावना और दुःख दर्द पर आधारित है। पुरुष प्रधान समाज में सदियों से विद्यमान दोहरी मानसिकता के जाल में फँसी स्त्री की मूक अन्तर्व्यथा को महिला कहानीकारों ने वाणी दी है। महिला लेखन में यद्यपि स्त्री की अस्मिता, अधिकारों की माँग-अधिक मुखर है, फिर भी कहीं-कहीं स्त्री को दायित्व बोध का एहसास कराने का प्रयास भी दृष्टिगत होता है। दायित्व बोध का आख्यान प्रायः सभी लेखिकाओं ने प्रस्तुत किया है।

महिला कथाकारों का मुख्य रचना थल स्त्री जीवन है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि उन्होंने समाज के अन्य पहलुओं को अनदेखा किया है। स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज में व्याप्त सभी विसंगतियों एवं विद्रुपताओं पर उनकी दृष्टि पडी है। सांप्रदायिकता, दलित चेतना, आदिवासी जीवन, आदि विषयों पर उन्होंने कहानियाँ लिखी हैं। इन मामलों की ओर जनता का ध्यान आकृष्ट कराने की पहल उनकी रचनाओं में है। नमिता सिंह, मधु कांकरिया, मृदुला गर्ग, नासिरा शर्मा आदि सभी लेखिकाओं ने इन विषयों में रचनाएं की है। वस्तुपक्ष की चयन में स्त्री जीवन को प्रमुखता देने के कारण उनकी रचनाओं के ऊपर कई आरोप भी लगाये जाते हैं। इसके बारे में डॉ. रघुवीर सिन्हा का मत सराहनीय है - "अक्सर महिला कथाकारों के लेखन पर नारी गंध का आरोप लगाया जाता है। यह आरोप उनके एक सोची समझी साज़िस है। खुशी की बात है कि महिला कथाकारों पर इस लफ्फाजी का कोई असर नहीं पड़ा है। महिलाओं का गत एक दशक का लेखन स्वयं इस बात का प्रमाण है। लेखन में औरतपन और नारीगंध का आरोप भेदभावपूर्ण एवं सीमित विचार है। जिस तरह पुरानी कथाओं में राक्षसों को मानुस गंध आती थी उसी तरह आज के समीक्षक के नथुनों में नारीगंध समा गयी है।"[1]

समकालीन कहानी में स्त्री का सान्निध्य पर्याप्त रचनात्मक है। उसके कई कारण है। महिला लेखन की व्यापक स्वीकृति और बहसें। साथ ही साथ स्त्री वादी कार्यकलापों की सक्रियता।

---

1. डॉ. रघुवीर सिन्हा - आधुनिक हिन्दी कहानी समाजशास्त्रीय दृष्टि - पृ. 24

समकालीन महिला कहानीकारों की प्रतिक्रियाएँ

स्त्री जीवन का चित्रण साहित्यकारों ने समय-समय पर अपने-अपने दृष्टिकोण से किया है। स्त्री कभी सौन्दर्य के फलक पर चित्रित हुई तो कभी आदर्श के। वह कभी प्रेमिका के रूप में तो कभी जन्म-जन्म तक साथ निभानेवाली पतिव्रता, सती, साध्वी अर्धांगिनी के रूप में। उसे सामाजिक, पारिवारिक, धार्मिक सौन्दर्य पर आँकने के प्रयत्न हुए है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की कहानियों में चित्रित स्त्री वह नही है जो प्रसाद या प्रेमचन्द के ज़माने में थी अथवा विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक गुलेरी, सुदर्शन, अश्क, जैनेन्द्र, अज्ञेय आदि की कहानियों में दिखाई देती हैं। आज की स्त्री उन तमाम सन्दर्भों से मुक्त है। वह धार्मिक, नैतिक एवं मनोवैज्ञानिक चारदीवारियों को लाँघनेवाली जीती-जगती हमारे सामने सांस लेती स्त्री है। घर-आँगन की कैद से मुक्त प्रगति के हर क्षेत्र में पुरुष की बराबरी करनेवाली स्त्री ने पुरानी सारी मान्यताओं पर प्रश्नचिह्न लगा दिया है। समकालीन कहानीकारों ने ऐसी स्त्री पात्रों का चित्रण बहुत की प्रभाव पूर्ण ढ़ग से किया है।

स्त्री की गाथा का सीधा संबन्ध अपने समाजशास्त्र से है। कारण स्पष्ट है। उसका भोग्य रूप ही अरसे से सर्वस्वीकृत रहा है। यद्यपि इस अमानवीय दृष्टि की मानवीयता से आवृत रखने का कार्य किया गया है फिर भी हमारी सामाजिकता की मूलदृष्टि वही है। इसलिए सामाजिक ड़र को मान्यता मिली। स्त्री के सभी पक्षों को भय

से जोड़ा जाता रहा। इसलिए सुरक्षा की आवश्यकता पर ज़ोर दिया गया। इन सबके पीछे स्त्री का भोग्य रूप अधिक स्पष्ट है। उसका भोग कभी भी संभव है। इस प्रकार स्त्री के हृदय को भी निमंत्रित किया गया जिससे उसे अस्वतंत्रता ही प्रदान की गई। स्वतंत्रता की इच्छा उसके हृदय से निकाल दी गयी। बहुत कम स्त्रियाँ उससे मुक्त हो पाती है। अतः स्त्री का इतिहास हमारी विघटित सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल दृष्टि का ही प्रतिफलन है। इतने पर भी स्त्री का ऐसा एक इच्छित इतिहास भी है जिसमें हम यह पाते है कि स्त्री स्वतंत्रता की इच्छा को पालती-पोसती ही नहीं बल्कि अपनी जीवनशक्ति के रूप में उसे विकसित भी करती है। लेखिकाओं ने इस इच्छित इतिहास को ढूँढ़ा है। चित्रा मुद्गल की रचनाओं में स्त्री का यही बिम्ब अधिक सघन और सटीक रूप में मिलता है। 'प्रेतयोनि' कहानी की अनिता गुप्ता भी ऐसे स्फुलिंग को सुरक्षित रखती है।

स्त्री में व्यक्तित्व की पहचान एवं अस्मिता बोध जगाने का कार्य महिला कहानीकारों ने किया है। भारतीय परिवेश में एक स्त्री होने के नाते महिला कहानीकारों ने स्त्री जीवन के सभी पहलुओं का अंकन किया। आजकल स्त्री अपना स्वनिर्माण करना चाहती है जहाँ उसका अपना व्यक्तित्व हो, अपना घर-परिवार हो, जिसे वह किसी बन्धन के रूप में स्वीकारने के बजाय सहर्ष स्वीकार कर सकें। समकालीन लेखिकाओं ने व्यक्ति स्वातंत्र्य की इस आकांक्षा को बड़ी

निर्भीकता से व्यक्त किया है। सिम्मी हर्षिता की 'बनजारन हवा' की नायिका हवा के समान मुक्त दिखाई देती है। इस प्रकार की मुक्ति की चाह मणिका मोहिनी, शशिप्रभा शास्त्री, मृदुला गर्ग, चित्रा मुद्गल, सूर्यबाला आदि लेखिकाओं ने अपनी कहानियों में प्रखरता के साथ प्रस्तुत किया है। महिला कथाकारों के संबन्ध में डॉ. ऊर्मिला गुप्ता का मन्तव्य है - "यदि पुरुष लेखकों के कथा साहित्य से लेखिकाओं के तत्संबन्धी साहित्य पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार किया जाए तो यह ज्ञात होगा कि लेखिकाओं की रचनाएँ कम महत्वपूर्ण नहीं है। यदि पुरुषों ने जीवन और जगत के व्यापक क्षेत्रों का अनुशीलन करके अपनी रचनाओं में अपेक्षाकृत विविधता का समावेश कर लिया है तो लेखिकाओं ने भी सीमित कार्य क्षेत्रों के सूक्ष्म एवं सहज चित्र प्रस्तुत करके कथा-साहित्य को स्पृहणीय विशेषताओं से विभूषित किया है। कथा साहित्य के अध्ययन की संपूर्णता तो तभी है जब लेखकों के कृतित्व के साथ लेखिकाओं के योगदान का भी सम्यक मूल्यांकन किया जाए।"[1] महिला कहानीकारों की कहानियाँ हर युग में कम या बड़ी मात्रा में चुनौतिपूर्ण रही है। इन कहानियों का अंतरंग हमारे इतिहास से जुड़े हुए होने के कारण वे हमें चुनौती देती है। यह रचनाकार की चुनौती है और रचना की भी।

❖❖❖

1. उर्मिला गुप्ता - हिन्दी कथा साहित्य के विकास में महिलाओं का योग - पृ. 101

अध्याय : तीन

समकालीन महिला कहानीकारों की कहानियों में पुरुषाधिष्ठित मूल्यों के वर्चस्व और अधीनस्थ स्त्री

"मैं यह नहीं कहना चाहती कि केवल एक नौकरी या वोट देने के अधिकार मात्र से ही स्त्री स्वतंत्र हो जाती है। आज की दुनिया में नौकरी भी एक प्रकार की गुलामी है। स्त्री की दशा में इन पारिस्थितिक परिवर्तनों से सामजिक संरचना बहुत अधिक नहीं बदली है। दुनिया अब भी पुरुषों की है और जैसा वे चाहते हैं, वैसा ही आकार ग्रहण करती है।" पुरुषाधिष्ठित समाज के नैरन्तर्य का ठीक परिचय सिमोन द बोउवार की प्रस्तुत कथन में है। संपूर्ण संस्कृति में स्त्री को स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में कहीं भी नहीं देखा गया है। हमेशा पुरुष की होकर रहनेवाली स्त्री ही पूज्य है।

स्वतंत्रता के पश्चात् निश्चय ही स्त्री में बहुआयामी परिवर्तन आया है। आज उसे समाज में बराबरी का अधिकार मिला है। आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त हुई है। राजनीतिक अधिकार प्राप्त है। घर-परिवार में उसका जीवन अपेक्षाकृत बेहतर हुआ है। तथापि तस्वीर का दूसरा पहलू यह है कि अभी भी स्त्री का शोषण प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दोनों ही रूपों में ज़ारी है। प्रत्येक साहित्यकार ने स्त्री की महत्ता को स्वीकार

---

1. सीमोन द बोउवार - द सेकेंट सेक्स - अनु. प्रभा खेतान-स्त्री उपेक्षिता - (1991) - पृ. 318

किया है। विशेषकर समकालीन महिला कहानीकारों की कहानियों में स्त्री जीवन का समग्र रूप से उद्‌घाटन हुआ है, कारण यह है कि एक तो वे स्वयं स्त्री हैं अतः उन्होंने स्त्री जीवन की समस्त स्थितियों को निकट से देखा, भोग और जाना है। स्त्री के मनोविज्ञान, सामाजिक स्थितियाँ, परिवेशगत दबाव, उसका आन्तरिक एवं बाह्य व्यक्तित्व तथा अस्मिता हेतु सतत् संघर्ष गाथा से उनका यथार्थ साक्षात्कार है। अपने व्यापक जीवनानुभव और वैचारिक दृष्टि के आधार पर लेखिकाओं ने समाज के ऐतिहासिक विकासक्रम में स्त्री जीवन की गहन पड़ताल की हैं। यही कारण है कि इनके लेखन में स्त्री जीवन का जीवंत चित्रण हुआ हैं।

पुरुषाधिष्ठित मूल्य

यदि भारतीय समाज की पितृसत्ता के इतिहास का विश्लेषण करें तो पता चलता है कि स्त्री का अनेकानेक रूप में शोषण होता रहा है। उसे सदैव दासता का जीवन जीने के लिए मजबूर किया गया। पुरुषाधिष्ठित मूल्यों के अधीन उसे गुज़रना पड़ा है कि आज भी वह अपनी मुक्ति हेतु छटपटा रही है। दरअसल हमारे समाज की संरचना ही कुछ इस प्रकार की है स्त्री न घर में सुरक्षित है और न ही बाहर। स्त्री का शोषण सार्वजनिक स्थान से अधिक घर-परिवार में होता है। भारतीय परिवेश में स्त्री-मुक्ति के रास्ते की सबसे बड़ी बाधा स्त्री की

चिन्ताओं में पुरुष मूल्यों का वह अनुकूलन है जो उसके शोषण को सहज, स्वाभाविक और उचित ठहराकर स्त्री दासत्व को परंपरा, मर्यादा, पवित्रता जैसे मूल्यों के आवरण में प्रस्तुत करता है। इसलिए सीमोन द बोउवार कहती है कि "स्त्री पैदा नहीं होती पैदा होने के बाद उसे स्त्री बना दिया जाता है।"[1] देखा जाए तो इसमें दोष पुरुषों का नहीं उस पितृसत्तात्मक व्यवस्था का है जो जन्म से लेकर मृत्यु तक पुरुषों को एक ही पाठ पढाती है कि स्त्रियाँ उनसे हीनतर है, उनके भोग का साधन मात्र है, उनसे कुछ नीची हैं। अतः आवश्यकता पुरुष बहिष्कार की नहीं बल्कि संस्कारों में परिवर्तन की है।

लेखिकाओं का मानना है कि आज इक्कीसवीं सदी के दरवाज़े पर खड़ी स्त्री की जो तस्वीर है वह चकाचौंध करती रोशनी के बीच खड़ी स्त्री की है जिसका एक पैर दहलीज के भीतर अन्धेरे में है और दूसरा बाहर खींचता चला जा रहा है। साथ ही यह भी सच है ये दोनों स्त्रियाँ एक दूसरे की उपस्थिति और अस्तित्व से एकदम अनजान है। स्त्री की यह तस्वीर अस्तित्व विभाजन की है और साथ ही पूरे समाज के विभाजन की है।

लगातार बर्बरता एवं आदिम वृत्तियों की ओर बढ़ती जा रही यह दुनिया बीभत्स शक्ल अख्तियार करती जा रही है। किन्तु उसके

---

1. सीमोन द बोउवार - द सेकेंट सेक्स - अनु. प्रभा खेतान-स्त्री उपेक्षिता - (1991) - पृ. 121

पैने दांत सिर्फ स्त्री के जिस्म पर ही गड़े है। देह ही नहीं, देह के साथ अस्तित्व को लहूलुहान कर देनेवाली सच्चाई ऊर्मिला शिरीष की कहानी 'चीख' के माध्यम से व्यक्त हुई है। यह मात्र एक स्त्री का सत्य नहीं बल्कि समस्त स्त्री जाति का सार्वभौमिक सत्य है। बलात्कार पुरुष को अपने समाज में मातम करने का कोई कारण नहीं। इसलिए कलंक की स्याही भी स्त्री के ही जीवन को खंड़-खंड़ करती है। पुरुष अपनी हैवानियत की आड़ी-तिरछी लकीरें स्त्री की देह पर खींच कर चल देता है। गुमनामी के अन्धेरे में समाज को उसके नाम जानने से कोई सरोकार नहीं, सामने आती है महज स्त्री। देह बलात्कार के उपरान्त जब पूरा ब्रह्माण्ड उसकी पवित्रता पर उंगली उठाता है। 'चीख' की पीड़िता विधाता के इस अनुपेक्षित न्याय को तर्कों से टटोलती है - "मेरा क्या दोष है इसमें? मूर्ति पर जल चढ़ानेवाला भक्त कहलाता है, फिर जीती-जागती हाड़-मांस की मूर्ति को खंड़ित करनेवाला पापी क्यों नहीं माना जाता? क्यों नहीं वह बहिष्कृत होता है?"[1]

बलात्कार और यौन हिंसा समाज में फैले हुए हैं। दिन-ब-दिन यौन शोषण की बढ़ोत्तरी हो रही है। समाज और अदालत में होनेवाली बदनामी और परेशानी से बचाने तथा घर और परिवार की प्रतिष्ठा को बचाने के लिए बलात्कार के अधिकांश मामले दबा दिये जाते हैं।

---

1. ऊर्मिला शिरीष - रंगमंच (क.सं) चीख (कहानी) - (2001) - पृ. 33

नन्हीं-नन्हीं बच्चियों से लेकर बूढ़ी औरतों से भी बलात्कार और कभी बलात्कार के बाद हत्या, पिता द्वारा बेटी का बलात्कार आदि भीषण खबरों से भरे पड़े हैं हमारे समाज और समाचार माध्यम। बलात्कार पुरष करता है और अदालतों पर भी पुरुषों का ही कब्जा है। समाज के जो अधिकारी वर्ग स्त्री की मदद करने को है वे स्वयं मौका पाते ही उनपर जुल्म करते हुए नज़र आते हैं।

पुरुषाधिष्ठित मूल्य और अधिकार

महादेवी वर्मा के अनुसार - "मनोवैज्ञानिक दृष्टि से, शरीरिक विकास के विचार से और सामाजिक जीवन की व्यवस्था से स्त्री और पुरुष में विशेष अन्तर रहा है और भविष्य में रहेगा। यह मानसिक शारीरिक भेद न किसी की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करता है और न किसी की हीनता का।"[1] इस भिन्नता की अनिवार्य विशेषता को रेखांकित करती हुई वे कहती है कि - "पुरुष समाज का न्याय है, स्त्री दया, पुरुष पतिशोधमय क्रोध है, स्त्री क्षमा, पुरुष शुष्क कर्तव्य है, स्त्री सरस सहानुभूति और पुरुष बल है, स्त्री हृदय की प्रेरणा।"[2] व्यावहारिक स्तर पर भेदभाव ही पुरुष और स्त्री में ज़्यादा असमानता पैदा करता है। इससे स्त्री पर पुरुष का आधिपत्य स्थापित हो जाता है और यह मानसिकता स्त्री को इतनी सूक्ष्मता से प्रभावित करती है कि उसे

1. महादेवी वर्मा - श्रृंखला की कड़ियाँ - (2004) - पृ. 52
2. वही - पृ. 13

अपनी हीनता, शोषण, दासत्व सेवा भावना सबकुछ सहज व स्वाभाविक लगने लगते हैं।

दाम्पत्य पति और पत्नी के सह-अस्तित्व को प्रकट करता है। लकिन पुरुषसत्ता के प्रभुत्व के कारण पति इसे भी अपनी मर्जी से चलाता है। वहाँ स्त्री की इच्छा-अपेक्षाओं का ज़्यादा महत्व नहीं होता। मृदुला गर्ग की कहानी 'दुनिया का कायदा' इसी दोहरेपन को उजागर करती है, जहाँ पत्नी की मृत्यु के उपरान्त पुरुष का विवाह दुनिया के कायदे के अनुसार संपन्न होता है जबकि स्त्री के विधवा होने पर पुनर्विवाह की बात कौन कहे, उस पर वैधव्य का बोझ लादकर कुलक्षणी तक मान लेनेवाली दुनिया की दस्तूर आज भी कायम है। पति और पत्नी दोनों ज़िन्दा भी रहते हैं तो उस स्थिति में सब कुछ त्यागकर संबन्धों को निभाने की ज़िम्मेदारी स्त्री के ऊपर ही लाद दी जाती है। स्त्री की इस घुटनभरी ज़िन्दगी को लेखिकाओं ने अपनी कहानियों में सशक्त वाणी दी है। उषा महाजन ने स्त्री की मनोदशा और अंतर्द्वन्द्व को स्पष्टता से उजागर करते हुए दाम्पत्य के नाम पर स्त्री जीवन को होम करार दिया है। इस रूप में उनकी 'पुल' कहानी ली जा सकती है जहाँ पति अपनी पत्नी को किस प्रकार हँसने बोलने की छूट देता है, पर इस छूट को एक सीमा के बाद तुरंत अपनी मर्जी से वापस भी लेने लगता है। विंध्या इसी हालत की शिकार है, "मन की आँखों पर कौन सा पर्दा ड़ाले जा रही थी अब तक। इसी निर्मोही प्रेमी के

अंतर की तमाम कोमल भावनाओं को व्यक्त करती रही। उसने तो सोमेश को उसके सारे संबन्धों के साथ चाहा था, उसकी कमियों-खामियों के साथ अपनाया था और एक वह था जो उसे अपने पेट के जाये बच्चों से अलग करके सोने के पिटारे में रखता था, ताकि वह उसके काम आती रहे। जब तक उसका जी चाहे। क्या रखैल बनाकर रखेगा उसे? सिर्फ दिल बहलाने की चीज़ थी वह उसके लिए? बिशन उसे साधन बनाकर यूज़ करता रहा और सोमेश?"[1] पुरुष प्रधान समाज में नारी सदियों से दोयम दर्जे की नागरिक बनी रही है। सारे मूल्य, परंपराएँ, संबन्ध और रिश्ते-नाते स्त्री के लिए चुपचाप सहते रहने से चलता रहा है। लेकिन इसकी बुनियाद मानवीय नहीं बन सकी, विशेषकर स्त्रियों के सन्दर्भ में।

स्त्री की इस असुरक्षा ने विवाह संस्था की विश्वसनीयता पर भी प्रश्नचिह्न लगा दिया है। विवाह के वक्त पुरुष पढ़ी-लिखी स्त्री का ही चुनाव करते हैं। सुशिक्षित स्त्री के निजी व्यक्तित्व की चाह दाम्पत्य में मतभेद उत्पन्न करती है। विवाहोपरान्त पत्नी के व्यक्तित्व को अपने अहं के दमनचक्र के नीचे कुचल देना चाहते हैं। अगर पत्नी अपनी विकल्प के लिए मुँह खोलती है तो पति का अहं गर्जन करने लगता है। इस यथार्थ को सामने लाती है चित्रा मुद्गल की कहानी 'इस हमाम में।' पत्नी दिवा से सोमेश की अपेक्षा है कि वह अठारहवीं सदी की

1. हंस (पत्रिका) नवंबर 1998, पृ. 39

पत्नी की तरह घर में उसकी उचित-अनुचित का पालन करती हुई चुपचाप पड़ी रहे। कहानी में कचरा उठानेवाली अंजा और कहानी की नायिका दिवा दोनों ही एक स्तर पर ही अपने को जीता हुआ पाती है। दोनों का दर्द समान है और पीडा भी। दिवा का कहना है कि "क्या मैं सोमेश की उँगलियों का संकेत भर हूँ? वही और बस इतनी सी मेरी पहचान है और मेरे होने की शर्त - अंजा ने तीसरे आदमी के साथ घर बसाया है, मैं..... मैं..... इस कटीली फेंसिंग की सुरक्षा की चारदीवारी का भ्रम बनाये क्यों पेट में निवाले ड़ालने की मज़बूरी को जीवन का तालमोल और आपसी समझदारी जैसे अर्थहीन शब्दों की आड़ में जी रही हूँ।"[1] यहाँ लेखिका ने स्वार्थपूर्ण पुरुष व्यवहार पर तीखा प्रहार किया है।

राजीसेठ की 'अपने विरुद्ध' कहानी का आधार वह प्रथा है जिसके तहत बहुत से पारंपरिक परिवारों में पति अपनी पत्नी की लेखन जैसे शौक को निषेधात्मक दृष्टि से देखता हैं। श्याम उन रूढिवादी पतियों की तरह है जो अपनी पत्नि को निरन्तर समझाता रहता है कि लिखना अच्छी स्त्रियों का काम नहीं। प्रस्तुत कहानी का प्रतिपाद्य भी इन्हीं वर्जनाओं के प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष पीड़ाओं को सहती हुई अंततः अपने लेखकत्व के विरुद्ध होने का विकल्प चुनने को विवश

---

1. चित्रा मुद्गल - भूख (कं.सं) इस हमाम में (कहानी) (1995) - पृ. 77-78

हो जाती है। अपने भीतर के लेखन की पल-पल होती मौत के कारण वह अनुभव करती है कि जीवन में कुछ नहीं प्राप्त कर सकी, अतः वह अस्तित्वहीन हो चली है - "मुझो जाने क्यों लगने लगा कि मेरे भीतर का लेखक मर रहा है, प्रोत्साहन के बिना, आश्वासन के बिना। आज देवजी की बात करते वह जिसे कहता है, नहीं देख सकता, उसे ही देखता रहा है वह सतत मेरे भीतर पनपने को आतुर होती रचनात्मकता की भूख और मेरा तिल-तिल मरना।"[1] अतः वह स्वयं बंजर होते देख रही है। सुधा अरोड़ा की 'रहोगी तुम वही' में तानाशाह पति के पत्नी-दमन के विविध हथकण्डों को व्यंग्यमय शैली में उजागर किया गया है। गोल्डमेड़लिस्ट संगीत विशारद, पेंटिंग में सिद्धहस्त एवं संपूर्ण आज्ञाधारी और समर्पिता पत्नी से पति फिर भी खुश नहीं है। पल-पल उसे प्रताड़ित करता है। सिर्फ एक ही प्रमाणपत्र पत्नी को देता है "रहोगी तुम वही।" मध्ययुगीन सामन्ती संस्कारों से युक्त पति की नज़र से आधुनिक, प्रतिभा संपन्न, सक्षम स्त्री की हैसियत सिर्फ एक नौकरानी की है। बेकार पति अपनी हीनता की भावना छिपाने के लिए उस पर रौब जमाता है। पुरुषाधिष्ठित मूल्यों के वर्चस्व के अधीन स्थित स्त्री की मूक अन्तर्व्यथा को ही लेखिकाओं ने यहाँ उभारा है। सिमोन द बोउवार के अनुसार - "स्त्री अपना चुनाव अपने स्वभाव के अनुकूल

---

1. राजी सेठ - अन्धे मीड़ से आगे (कं.स.) - अपने विरुद्ध (कहानी) (1983) - पृ. 82

नहीं करती, बल्कि पुरुष द्वारा परिभाषित और प्रदत्त जीवन को स्वीकारती है।"[1]

अधिकार और स्त्री

पितृसत्तात्मक व्यवस्था के आरंभिक दौर में स्त्री की शक्ति और स्थिति पूर्णतः उपेक्षणीय नहीं हुई थी। परन्तु जैसे-जैसे पितृसत्तात्मक व्यवस्था सशक्त बनती गई, वैसे-वैसे स्त्रियों पर प्रतिबंध कड़े होते गये, उनसे अधिकार छीन लिए गए। पितृसत्ता के इस षड्यंत्र की सार्वभौमता को सिद्ध करते हुए जॉन स्टुअर्ट मिल भी कहते हैं - "पुरुष अपनी स्त्रियों को एक बाध्य गुलाम की तरह नहीं बल्कि एक इच्छुक गुलाम की तरह रखना चाहते हैं। सिर्फ गुलाम नहीं बल्कि पसंदीदा गुलाम, इसलिए उनके मस्तिष्कों को बंदी बनाये रखने के लिए उन्होंने सारे संभव रास्ते अपनाये हैं।"[2] सदियों से स्त्री, पुरुष के बनाये पुरुषवर्चस्वी समाज के कानून पर चलती है, उसके बनाये नियमों एवं संहिताओं का पालन करती है। बांझपन के कारण उत्पीड़ित स्त्री का चित्रण करती हैं नासिरा शर्मा की 'बावली' शशिप्रभा शास्त्री की 'कोई नहीं' आदि कहानियाँ। 'बावली' की सल्मा का सवाल पुरुष सत्तात्मक समाज के दोहरे प्रतिमानों के लिए एक चुनौती देता है। वह सोचती है - "हमेशा

---

1. सिमोन द बोउवार - द सेकेंट सेक्स - अनु-प्रभा खेतान, स्त्री उपेक्षिता - (1991) - पृ. 69
2. जॉन स्टुअर्ट मिल - द सबजेक्शन ऑफ विमन - अनु. युगांक धीर - स्त्री और पराधीनता - (2002) - पृ. 25

दिया, कुछ लिया नहीं। आज जब अपनी कोख से एक बच्चा नहीं दी सकी तो मैं एक बेकार शै मान ली गयी। अगर खालिद मेरी गोद न भर पाते तो क्या मैं दूसरी शादी करती?"[1] पुरुष अपनी कमी को या तो छिपाता है या उसे गलत होते हुए भी न्यायोचित ठहराता है। शिक्षित और अशिक्षित सभी स्तर के पुरुष निसन्तान पत्नी को उत्पीड़ित करते हैं। सिर्फ निस्सन्तान नहीं अपितु लड़कियों को जन्म देनेवाली पत्नी भी यंत्रणाओं की शिकार होती है। मृदुला गर्ग की 'तीन किलो की छोरी' इसी विषय पर आधारित कहानी है।

भारतीय स्त्री अपने पति और अपने परिवार का सम्मान बढ़ाने की हर समय भरसक कोशिश करती रहती है। इस कोशिश में बहुत बार वह अपने जीवन के अभावों को, मानसिक टूटन को चुप-चाप झेलती है और औरों के सामने अपने वैवाहिक जीवन का सुन्दर चित्र उपस्थित करती है। यह हर एक स्त्री की मजबूरी है, यथार्थ है। मृदुला गर्ग की 'लिली ऑफ दि वैली' की निशी इसी प्रकार की स्त्री है। निशि जैसी समझदार और विवेकशील स्त्री भी इस घुटन में जीने के लिए क्यों बाध्य है? बात फिर वहीं आकर अटकती है स्त्री घर क्यों नहीं छोड़ती? इसका उत्तर समाज के अलिखित नियमों में छिपा है कि पति शराबी क्यों न हो पर 'पति' की 'पत्नी' या तो पुरुष के होकर

---

1. नासिरा शर्मा - पत्थर गली (क.सं.) बावली (कहानी) - (1998) - पृ. 38

रहनेवाली स्त्री का ही सम्मान यह समाज करता है। परित्यक्ता स्त्री न समाज में सम्मान पाती है न इज्ज़त। इसी बात का फायदा राकेश उठा रहा है - "अरे भाई, अपनी कौन सी नौकरी है कि आने में मुश्किल हो। आया हूँ जिससे आपकी सहेलियाँ भी देख ले शुचिता निशि का पति कैसा है? सचमुच मज़े की बात है।"[1] निशि की जान जा रही है और राकेश को मज़ा आ रहा है। निशि के स्त्री होने की मजबूरियों का फायदा वह बराबर उठा रहा है। राकेश महज पुरुष होने के कारण उसे विशेष अधिकार मिला है, जिसके कारण वह ताकतवर बन गया है, दूसरी ओर सारे गुणों से युक्त होकर भी निशि कमज़ोर पड़ जाती है। कमज़ोरी का कारण है पुरुषवर्चस्व पर चलता समाज। "संसार भरमें नारी जाति सदा से पददलित रही हैं और यद्यपि साहित्य में नारी की बड़ी महिमा है, पर व्यवहार में नारी को कभी भी उच्चासन नहीं दिया गया। नारी जाति की विवशताएँ सदा से बनी रही हैं और कभी भी उसे सुख-सुविधाएँ प्राप्त नहीं हुई। यह अवस्था हमारे ही देश की नहीं रही है, बल्कि संसार के सभी देशों की अवस्था यही रही है। आज भी नारी संसार में पीड़ित अवस्था में ही है और आज भी उसकी अवस्था में कुछ अधिक परिवर्तन नहीं हुआ है।"[1]

---

1. मृदुला गर्ग - टुकडा-टुकडा आदमी (क.सं) - लली ऑफ दि वैली (कहानी) - (1995) - पृ. 125
2. सं. जगदीश्वर चतुर्वेदी, सुधा सिंह - स्वाधीनता संग्राम हिन्दी प्रेस और स्त्री का वैकल्पिक क्षेत्र - मनोरमा गुप्त - नारी जाति के सामने कुछ कार्य (लेख) - (2006) - पृ. 143

अधिकार से बहिष्कृत स्त्री

अपना प्रभाव तथा अधिकार जमाने के लिए सदा से सबल दुर्बलों का शोषण करता आया है। स्त्री भी विभिन्न अवस्थाओं में भिन्न लोगों द्वारा अलग-अलग तरह से शोषित होती आयी है। आज वह घर की चारदीवारी से बाहर निकलकर शिक्षित बनकर पुरुष के साथ कंधे-से-कंधे मिलाकर चलने लगी है। फिर भी एक स्त्री होना उसकी कमज़ोरी है। प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में स्त्री मुख्यधारा से हमेशा धकेल दी जाती है। घर-परिवार में हो या सार्वजनिक स्थानों में उच्च पदों की अधिकारिणी बनने पर भी स्त्री को उपेक्षाएँ सहनी पड़ती हैं। स्त्री के अधिकार से बहिष्कृत होने के पीछे कई कारण हैं। "भारतीय समाज के स्त्री की अस्मिता और अधिकारों का जाति-व्यवस्था से सीधा अन्तर्विरोध है। सामाजिक पराधीनता एवं स्त्री अधिकारों के हनन में जाति व्यवस्था प्रधान कारक है। वर्णव्यवस्था की वैधता को चुनौति देना स्त्री अधिकारों को अर्जित करने की पहली शर्त है। पुरुष वर्चस्व, पुंसवादी विचारधारा एवं जाति व्यवस्था के त्रिकोण के खिलाफ संघर्ष स्त्री मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करता है। वे सभी विचार जो किसी न किसी कारण से जाति व्यवस्था के पक्षधर है उनका अंततः स्त्री विरोधी नज़रिया रहा है। यह भी कह सकते हैं कि जाति व्यवस्था स्वभावतः स्त्री अधिकार विरोधी है।"[1] स्त्री की स्थिति धर्म, अर्थ, जाति, शिक्षा,

1. जगदीश्वर चतुर्वेदी - स्त्रीवादी साहित्य विमर्श - (2000), पृ 46-47

संस्कृति, सिद्धान्त, राजनीति आदि विभिन्न संकल्पनाओं से जुड़ी आयी है और आज भी जुड़ती दिखाई देती है।

'परछाइयों से परे' परछाइयों के भीतर रहकर उससे बाहर आने के लिए विवश एक स्त्री के आत्मसंघर्ष की कहानी है। इस कहानी के माध्यम से किसलय पंचोली ने अपने विचारों के बदले दूसरों द्वारा थोपे गये मानदण्डों के आधार पर जीने के लिए मजबूर स्त्री की बेचैनी को प्रस्तुत किया है। घरवालों की ज़बर्दस्ती के सामने उसे अपने विचारों पर पर्दा डालना पड़ता है। बीमारी की खबर छिपाने के कारण उसे ससुराल में अस्वतंत्र होकर जीना पड़ता है। हमेशा भय का भाव उसके मन को झकझोर करता रहता है। स्त्री को समाज द्वारा बनाये गये ढाँचे के अन्दर अपना जीवन बिताना पड़ता है। स्त्री एक स्वतंत्र व्यक्तित्व है और उसका अलग व्यक्तित्व है यह मानने के लिए कोई भी तैयार नहीं है। सभी अपने विचारों को स्त्री के ऊपर रखना चाहते हैं। शालिनी की माँ है, भाभी है और सांस भी है। लेकिन ये तीनों स्त्रियाँ शालिनी को समझने के बदले उसे दुविधा में डाल देती हैं - "बेटा, बिना दहेज के इतना अच्छा लड़का मिल रहा है, तुझसे घर की हालत छुपी तो नहीं। कहीं बीमारी का सुन मुखर गया तो?"[1] स्त्री के प्रति समकालीन समाज में भी यही दृष्टिकोण है। स्त्री के लिए

---

1. सं. मंगला रामचन्द्रन, स्वाति तिवारी - ज़मीन अपनी-अपनी (क.सं) किसलय पंचोली - परछाइयों से परे (कहानी) - (2001), पृ. 144

अपना कोई विकल्प नहीं है। बहिरंग ढ़ग से समाज लाख बदले कोई फायदा नहीं। स्त्री के प्रकरण में समाज अब भी वही है जो पहले था। 'शनाख्त' एक ऐसी कहानी है जिसमें मेहरुन्निसा परवेज़ ने स्त्री के व्यक्तित्व के दोनों पक्षों, कमज़ोर पक्ष एवं अपने अधिकारों की शनाख्त करने के पक्ष का चित्रण प्रस्तुत किया है। पुरुष के अधीशत्व को चुपचाप सहने की प्रवृत्ति अब भी स्त्री में है। अतः लेखिका यह व्यक्त करना चाहती है कि पुरुष वर्चस्व की भावना समाज से नहीं सबसे पहले हर एक स्त्री को अपने मन से निकालना है। प्रस्तुत कहानी की स्त्री शुरू में एक गुड़िया सी दिखाई देती है। गर्भावस्था में उसे छोड़कर पति चला गया था। वह अब चार साल के बाद वापस आने पर बिना किसी शिकायत के उसे वह अपनी ज़िन्दगी में स्वीकारती है। यहाँ स्त्री का कमज़ोरी पक्ष व्यक्त होता है। उसके साथ-साथ इस तथ्य की ओर भी इसमें डाला गया है कि स्त्री किसी भी हालत में अपने पारिवारिक ढ़ाँचे को बनाये रखने में पुरुष का साथ देती रहती है। यह तथ्य हमारी संस्कृति का है। स्त्री की प्रतिकृत मानसिकता तब प्रकट होती है जब पति की बुरी दृष्टि अपनी बेटी पर पड़ती है। सड़क पर पड़ी पति की लाश की शनाख्त करवाते समय उसे पहचानते हुए भी वह पुलीस से कहती है कि वह उसका पति नहीं है। लेकिन घर वापस आकर अपनी बेटी से वह गुड़िया की ओर इशारा करके कहती है कि - "मैंने उसे

पहचान लिया, देख यह.... यह पड़ी है उसकी लाश"[1] यहाँ स्त्री की परिवर्तित मानसिकता का चित्रण मिलता है। लेकिन यह तब्दीली उसने खुद अपनायी है। समाज ने उसे नालायक पुरुष के समक्ष भी मूक रहने को ही पढ़ाया है।

पुरुष होने के नाते बहन की कमाई के पैसे खाकर भाई उसी पर ज़ोर ज़बरदस्ती करता है। कृष्णा अग्निहोत्री की 'गुहार' और मेहरुन्निसा परवेज़ की 'ओढ़ना' कहानियों में भाई का खलनायक रूप स्तब्ध कर देता है। इन कहानियों की लड़कियाँ शादी करना चाहती हैं। परन्तु भाई उन्हें ज़बरदस्ती से कसाई की क्रूरता से वेश्या व्यवसाय में झोंक देता है। नित नये ग्राहकों के हाथों बहनों को बेचकर उन पैसों से मौज उडाता है। बांछड़ा जाति में बड़ी बेटी को वेश्या बनाने की प्रथा है। परन्तु 'ओढ़ना' कहानी का भाई पैसे के लालच में जाति के रीति के विरुद्ध ग्यारह वर्ष की बहन को भी इस नरक में धकेलना चाहता है। स्त्री की भोग्या रूप ही अरसे से सर्वस्वीकृत रहा है। यद्यपि इस अमानवीय दृष्टि की मानवीयता से आवृत रखने का कार्य किया गया है फिर भी मूलदृष्टि वही है। इसलिए सामाजिक डर को मान्यता मिली। स्त्री के सभी पक्षों को भय से जोड़ा जाता रहा। इसलिए सुरक्षा की आवश्यकता पर ज़ोर दिया गया। इन सबके पीछे स्त्री का भोग्या-

---

1. मेहरुन्निसा परवेज़ - आदम और हव्वा (क.सं.) - शानाख्त (कहानी) (1972), पृ. 33

रूप अधिक स्पष्ट है। उसका भोग कभी भी संभव है। इस प्रकार स्त्री के हृदय को भी निमंत्रित किया गया जिससे अस्वतंत्रता ही प्रदान की गई है। स्वतंत्रता की इच्छा उसके हृदय से निकाल दी गयी है। बहुत कम स्त्रियाँ उससे मुक्त हो पाती हैं। अतः स्त्री का इतिहास हमारे विघटित सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यदृष्टि का ही प्रतिफलन है।

'आदमकद' शीर्षक सूर्यबाला की कहानी निम्न वर्गीय जीवन से संबन्धित कहानी है। जिसमें जीवन भर काम की चक्की में पिसने के लिए बाध्य स्त्री का वर्णन मिलता है। यहाँ पति के नालायक सिद्ध होने पर भी पत्नी उसका विरोध नहीं करती है। साथ ही पति होने के कारण उसका आदर भी करता है। वह कहती है - "वह बेगैरत है तो है, मेरा मर्द है। रहने दो उसे, जैसा भी वह है मेरे आँखों के सामने मत छोटा करो उसे। औरत के लिए इससे बड़ी जहालत कोई नहीं कि सारी उम्र वह अपने आदमी की काहिली और बोदेपन पर ली जाती लिहाड़ी बर्दाश्ती करती रहे।"[1] हमारे समाज की स्त्री की यह दयनीय स्थिति है कि वह अपनी भोग्या- रूप को खुद इकरार करती है। 'आदमकद' की स्त्री की यही हालत है। जहाँ-जहाँ वह अपने पति के प्रति सहानुभूति दर्शाती है वहाँ स्वयं वह अपने शरीर के अनाकर्षण से वशीभूत है। इन सब के बावजूद कहीं वह यह भी अनुभव करती है

---

1. सं. मंगला रामचन्द्रन, स्वाति तिवारी - ज़मीन अपनी-अपनी (क.सं) - सूर्यबाला - आदमकद (कहानी) - (2001) - पृ. 30

कि उसका स्वत्व नहीं रह गया है। इस कारण से ही वह पति के निधन के पश्चात् स्वतंत्र अनुभव करती है।

हमारे समाज में अविवाहिता या विधवा स्त्रियों को बड़ी हेय दृष्टि से देखा जाता है। सामाजिक रूढ़ियाँ इतनी मज़बूती से भारतीय जनमानस में गहरी जड़ें जमाए हुई हैं कि आसानी से वे समूल नष्ट हो भी नहीं सकतीं। अविवाहिता और अकेली स्त्री की ज़िन्दगी अपने आप में एक जोखिम है। उसके लिए यदि कोई स्त्री तैयार है तो समाज किसी-न-किसी तरह उसकी बदनामी कर देता है। इसमें उसके अपने लोग भी कभी-कभार भाग लेते हैं। 'फिर हार गयी वह' कहानी में नमिता सिंह ने यह संकेत दिया है कि स्त्री कितनी ही पढ़ी लिखी और करुणामयी क्यों न हो। वह अकेली ज़िन्दगी नहीं गुज़ार सकती। अविवाहित जीवन स्त्री के लिए अभिशाप है। अपनी दीदी सुमन (अविवाहिता है) के विषय में कनक गलत धारणा बना लेती है - "जीजी जब-तब गड्डी नोट कभी महेन्द्र और कभी उसकी हथेलियों में दबा जाती है तो क्या चुप रहने के लिए या उन्हें अपनी उँगली पर नचाने के लिए? जीजी क्यों घर तबाह कर रही है उसका, क्यों छीनना चाहती हैं महेन्द्र को उससे। जब देखो, महेन्द्र के लिए... महेन्द्र के लिए वह.... और वह भी हाथ बाधे खड़े हैं गुलामों की तरह। पैसा दीख रहा उन्हें जीजी का.... लालच में क्या खुद को भी बेच देंगे

वह।"[1] हमारे रूढिग्रस्त समाज का दृष्टिकोण ही स्त्री विरोधी है। वह स्त्री को युगों से सताता, भोगता और बन्दी बनाता आया है अतः स्त्री की स्वतंत्र अस्मिता उसे कैसे बर्दाश्त हो सकती है? पुरुष प्रधान समाज में कोई स्त्री अकेली और अविवाहिता रहती है तो इसका अर्थ है कि वह समाज को चुनौती देती है। पुरुष अपने अहं को तुष्ट करने के लिए उसकी मार-पीट आवश्यक मानता है। इसलिए वह उसे कुलच्छिनी घोषित करता है। पुरुष की छाया में स्त्री को सौभाग्यशाली कही जाती है पति की मृत्यु के बाद उसकी छाया से भी समाज परहेज करता है। पुरुषाधिष्ठित सामाजिक परंपराओं और रूढ़ियों का तानाबाना इतने महीन चीज़ों से निर्मित होता है कि उसे उघेड़ जाने की लगातार कोशिश भी असफल रहती है। पुरुषसत्तात्मक समाज में खासकर स्त्री के लिए प्रत्यक्ष व परोक्ष दोनों रूपों में कई नियम संहिताएँ मौजूद हैं। अगर जीना है तो स्त्री के लिए उन नियमों का चुपचाप अनुकरण करता है। अन्यथा हमेशा के लिए वह समाज से बहिष्कृत हो सकती है।

अर्थ और स्त्री

यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि स्त्री का स्वावलंबन तभी संभव हो सकता है जब वह आर्थिक रूप से मज़बूत और स्वतंत्र हो। शिक्षा ग्रहण करने के उपरान्त उसकी चेतना में बदलाव आया है।

---

1. नमिता सिंह - निकम्मा लड़का (क.सं.) - फिर हार गयी वह (कहानी) - पृ. 53

अब उसके अन्दर स्वाभिमान और आत्मविश्वास भी जागृत हुआ है। आर्थिक एवं सामाजिक भागीदारी के कारण अब उसका स्वावलंबन - भाव सुदृढ़ भी है। स्वावलम्बन को बनाये रखने के लिए कभी उसे संघर्ष भी करना है और कहीं समझौता तथा समर्पण भी करना पड़ रहा है। लेखिकाओं ने उन स्त्री चरित्रों के जीवन यथार्थ का चित्रण किया है जो अपने और परिवार के पालन-पोषण हेतु घर से बाहर निकलकर कार्य करती है। इन महिलाओं को दोहरे स्तर पर श्रम करना पड़ता है। घर के अन्दर चौका-बर्तन, झाड़ू-सफाई, बच्चे पालने से लेकर पति सेवा के कार्य आदि तथा अर्थ कमाने हेतु घर से बाहर दफ्तर, व्यावसायिक संस्थान, मेहनत, मज़दूर, कृषि कार्य आदि में संलग्न रहना पड़ता है।

बदले हुए माहौल में स्त्री को अपने अस्तित्व हेतु घर की चारदीवारी को लाँघना पड़ा है। इसके दो बड़े कारण विशेष रूप से उल्लेखनीय है। एक तो यह कि द्वितीय विश्व युद्ध के बाद बढ़ती महंगाई के दबाव ने परिवारों को आर्थिक रूप से कमज़ोर कर दिया था जिसके कारण संयुक्त परिवार प्रथा टूटी और लोगों का गाँव से शहर और महानगरों की ओर पलायन हुआ। स्त्री, बच्चे आदि सभी ने काम करना शुरू कर दिया। दूसरे, आज़ादी के बाद स्त्रियों ने पुरुषों की समानता की दौड़ मं अनेक कदम घर से बाहर निकाले। स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान ही मुक्ति की भावना ने उन्हें यह चेतना प्रदान की

थी कि बिना सामाजिक और आर्थिक स्वतंत्रता के वह मुक्ति नहीं पा सकती है। स्वतंत्र्योत्तर भारतीय समाज में स्त्री का घर से बाहर निकलना आर्थिक स्वावलंबन की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण कदम है।

उषा महाजन के अनुसार - "औरतों की आज़ादी और उनकी समानाधिकारों की माँग ने दाम्पत्य संबन्धों के पारंपरिक ढाँचे को तोड़ दिया है। महिलाएँ अब पति के गलत व्यवहार को चुपचाप सहन नहीं करती। आर्थिक स्वतंत्रता ने उनमें एक प्रकार की सुरक्षा और आत्म सम्मान की भावना को जन्म दिय है, जो हमारे पुरुष प्रधान समाज में 'अहं' के टकराओं का कारण बन गयी है। आपसी समझ की भावना के अभाव में छोटी-छोटी समस्याएँ भी विकराल रूप धारण कर पति-पत्नी के परस्पर संबन्धों में ज़हर घोलने लगी हैं।"[1] स्त्री की कामकाजी भूमिका ने संबन्धों को नया आयाम दिया है। लेखिकाओं ने कामकाजी स्त्री के घर-बाहर की टकराहट को भावनात्मक संघर्ष के रूप में प्रस्तुत किया है। एक ओर आर्थिक दबावों और रागात्मक संबन्धों के बीच झूलती स्त्री की अंतर्दशा का चित्रण है तो दूसरी और उसकी बदलती पारिवारिक-सामाजिक भूमिकाओं का निरूपण भी कहानियों में हुआ है। चित्रा मुद्गल, मालती जोशी, राजी सेठ आदि ने अपनी कहानियों में कामकाजी स्त्री की विभिन्न स्थितियों से साक्षात्कार कराया

---

1. उषा महाजन - उठो अन्नपूर्ण साथ चलें - (1998), पृ. 112

है। वर्षों तक श्रमिक आन्दोलन से संबन्ध रही चित्रा मुद्गल की कहानियों में इस क्षेत्र की स्त्री का चित्रण हुआ है। इनकी 'दरमियान' कहानी में घर-बाहर की ज़िम्मेदारी निभाती स्त्री की समस्याओं का चित्रण है। किस प्रकार परंपरागत स्त्रीत्व-मातृत्व स्त्री की कार्यकुशलता में बाध होता है, इस भावनात्मक अंतर्द्वन्द्व को यह कहानी स्पष्ट करती है। 'त्रिशंकु' में निम्नवर्गीय स्त्री के संघर्षशील जीवन की प्रस्तुति हुई है - "अक्सा झोपडपट्टी का ऐसन हाल बा। जोरू चार घरि चौका-बर्तन करता है अउर ये साले दारू पी-पी के मेहरारू के हाड़-गोड़ तूरति है।"[1] इनकी अन्य कहानियों में भी कामकाजी स्त्री के आत्मसंघर्ष को और समाज में कामकाजियों के लिए विपरीत वातावरण की यथार्थ स्थिति का चित्रण है। 'लाक्षागृह' कहानी में स्त्री के वेतन के लोभ में उसे पत्नी बनाने वाली पुरुषवृत्ति का पर्दाफाश है। कामकाजी स्त्री अपनी अर्थोपार्जन क्षमता के कारण पुरुष की शोषक क्षुद्रता का शिकार बनती है, यही इस कहानी में दर्शाया गया है। मालती जोशी की कहानी 'मध्यान्तर' में शहरी क्षेत्र की कार्यशील स्त्री की बहुआयामी समस्याओं का चित्रण है। "यह कहानी नौकरीपेश नारी से संबद्ध पूरे हिन्दी कहानी जगत की एक गौरवपूर्ण उपलब्धि है, जहाँ नौकरीपेशा नारी के मानसिक त्रास, संघर्षपूर्ण स्थिति, विवशता, जीवन को उसी ढर्रे पर ढ़ोने की मजबुरी, नौकरी के कारण पति और संतान से दूरी, रिश्तों,

---

1. चित्रामुद्गल - लाक्षागृह (क.सं.) - त्रिशंकु (कहानी), (1982), पृ. 39

रस्मों और सामाजिक संबन्धों को तंग-दस्त होते हुए भी स्वयं 'अपने लिए कुछ नहीं' की पीड़ा आदि का गहन चित्रण हुआ है।"[1] आर्थिक स्वावलंबन स्त्री हो या पुरुष दोनों के लिए अनुपेक्षणीय है। लेकिन स्त्री के संदर्भ में अपनी आर्थिक स्वतंत्रता के ऊपर वह पुरुष सत्ता के जाल को देखती है। इसलिए उसे कभी-कभी अपनी कमाई पर भी कोई अधिकार प्राप्त नहीं होता है।

अर्थ से बहिष्कृत स्त्री

आज सुशिक्षित सक्षम स्त्री आर्थिक दृष्टि से बाह्य स्तर पर आत्मनिर्भर और स्वतंत्र है। अपवादों को छोड़कर वस्तुस्थिति विपरीत ही दृष्टिगोचर होती है। पुरुष ने स्त्री को धनोपार्जन की आज़ादी उसे प्रदान की है, अपनी सुविधा और लाभ के लिए। इस तथाकथित स्वतंत्रता के फल का उपभोक्ता पति और उसके माता पिता हैं। पत्नी के परिश्रम से प्राप्त धन वह अपनी ज़रूरतों के लिए सुरक्षित रखता है। यह छद्म स्वतंत्रता स्त्री को पुरुष की गुलामी से मुक्ति नहीं दिला सकी। आंशिक स्वतंत्रता उसे सुखकर प्रतीत नहीं होती। धनार्जन तो स्त्री ज़रूर करती है लेकिन अपनी कमाई पर उस का कोई अधिकार नहीं है। परंपरागत भूमिकाओं से न उसे छुटकारा मिला है। न अदृश्य बन्धन शिथिल हुआ है। लेखिकाओं ने अपनी कहानियों में स्त्री की इस

---

1. पुष्पपाल सिंह - समकालीन कहानी : युगबोध का सन्दर्भ, (1996), पृ. 172

विसंगत स्थिति का उसके द्वन्द्व, शारीरिक मानसिक तनाव का विविध कोणों से देखने का प्रयास किया है।

नमिता सिंह की कहानी 'गणित' के नायक रामलाल स्त्री को किस रूप में देखता है यह हमारे पुरुष वर्ग की व्यावसायिक सोच का सर्वोत्कृष्ट प्रमाण है। लेखिका रामलाल के स्त्री विषयक दृष्टिकोण को रेखांकित कर यह इंगित करना चाहती है कि स्त्री आज भी पुरुष का आर्थिक रूप से गुलाम है जिससे पुरुष बहुत सारे काम साधते हैं - "लुगाई का आना कोई घाटे का सौदा न होगा। आनेवाली पूरा काम संभाल लेगी। खाना पकाने से लेकर बरतन सफाई तक। न तनख्वाह की चिक-चिक और न काम की झिकझिक। सिर्फ खाना और कपड़ा तक मामला रहेगा। औरत से जो बाकी आराम होते है सो अलग। उसकी वजह से ग्राहक भी बढ़ेगी।"[1] रामलाल के उक्त कथन में जो स्त्री संबन्धी लाभों का उल्लेख है। दरअसल वह हमारी पूँजीवादी व्यवस्था के चरित्र की ओर भी संकेत करता है। पूँजीवाद ने स्त्री को एक जिंस बना दिया है जो पैसे के बल पर खरीदी भी जा सकती है और बेची भी जा सकती है।

परिवार के आत्मीय संबन्ध पर अर्थ और स्वार्थ की काली छाया फैली है। निम्नवर्ग में अर्थाभाव में माँ-बेटी के संबन्ध को भी

---

1. नमिता सिंह - निकम्मा लड़का (क.सं.) - गणित (कहानी) - पृ. 66

कडुवाहट से भरा देता है। माँ-बेटी के संबन्ध की विषासक्त स्थिति से साक्षात्कार करनेवाली कहानी है मेहरुन्निसा परवेज़ की 'ओढ़ना'। बेटी की इच्छा के विरुद्ध माँ उसे वेश्या व्यवसाय में धकेल देती है। अपनी जाति की इस वेश्या बनने की घृणित प्रथा को नकारकर बेटी अपने प्रेमी भैरव से विवाह करना चाहती है। पर माँ कसाइन की निर्ममता से बेटी की कोमल आशा का गला घोंट देती है। बेटी को धंधे पर बिठाकर समूचा परिवार उन पैसों से मौज मनाता है। 'रानी' क्रोध से जल उठती है। वह सोचती है कि "वह कोई भैंस नहीं है जो जब जहाँ मर्जी आए बेच दी - ऐसा सौदा करनेवाले ये माँ-बाप है?"[1] हर स्थिति में आंसू ही स्त्री की नियति है। अपने ही रक्त संबन्धियों की पार्शविकता का वह मुकाबला करती है और प्रेमी के साथ भाग जाती है। कुचली हुई स्त्री को लेखिका विद्रोह की प्रेरणा देती है। मेहरुन्निसा परवेज़ के स्त्री पात्र देवी या दानवी नहीं है। वे हाड़मांस के सुख-दुःख के प्रति अपने एहसास के प्रति सजग हैं। अधिकांश पात्र भावुक होने पर भी कमज़ोर नहीं है।

मालती जोशी की 'हमको दियो परदेस' और 'बोल री कठपुतली' में स्त्री के आर्थिक शोषण की व्यथा उजागर हुई है। स्त्री का यह दर्द लेखिका की कहानी की प्रिय थीम है। स्त्री पहले आर्थिक परावलंबन

---

1. मेहरुन्निसा परवेज़ -सोने का बेसर (क.सं) - ओढ़ना (कहानी) - पृ. 33

के कारण आंसू बहाती थी। आज यह समूची परिवार की आर्थिक धुरी और संचालिक होने पर भी आंसू उसके नहीं थमे हैं। 'हमको दिये परदेस' की कुसुम अपनी पूर्णाहुति देकर परिवार के सुख साधनों का माध्यम बनती है। इन्हीं के पैसों से अपना जीवन सुचारू रूप से चलानेवाले भाई-भाभी, बहनें इन्हें ही अपमान उपेक्षा से दंशित करते हैं। लेखिका हमारे समाज में लड़कियों की इस विड़ंबनात्मक स्थिति की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करती हैं। लड़की का न मायके में न ससुराल में कहीं भी अपना घर नहीं होता। नित्य निर्वासन ही उसकी नियति है। 'बोल री कठपुतली' में अर्जिका स्त्री के शोषण के विभिन्न पहलु अनावृत होते हैं। उसके विविध आयामी तनाव का बड़ी ही सूक्ष्मता से रेखांकित हुआ है। यह कहानी कामकाजी स्त्री की विभिन्न समस्याओं को अनेक सन्दर्भों में उधेड़कर रखती है। लड़की की उच्च शिक्षा का उपयोग ससुरालवाले अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए करते हैं। स्त्री को नौकरी करने की इज़ाज़त पुरुष अपनी सुविधा के लिए देता है। उसकी कमाई का फल तो पति और उसका परिवार चखते हैं। अपनी ज़रूरत पूरी होने पर पतिमहोदय पत्नी की नौकरी बड़ी शान से छुड़ाते हैं। न वह नौकरी अपनी मर्जी से शुरू कर सकती है न उसे छोड़ सकती है। वह तो सिर्फ पति के इच्छानुसार नाचनेवाली निर्जोव कठपुतली है। पहले इस नवपरिणीता को घर से दूर पटक दिया जाता है और बच्चों से भी उसे दूर रखा जाता है। परिणाम स्वरूप बच्चे

अपनी माँ से मानसिक तौर पर भी दूर चले जाते हैं। सभी अच्छी तरह से जानते हैं कि नौकरी उसके आमोद-प्रमोद का साधन नहीं है। बल्कि परिवार को सुचारू रूप से चलाने के लिए अनिवार्य है। पर यह कठपुतली जीवन की संध्या में ही क्यों न हो इस अन्याय का प्रतिवाद करती है कि उसकी शरीर यंत्रचालित नहीं है, उसमें सुख-दुःखों के भावों से परिपूर्ण मन भी है। मालती जोशी के स्त्री पात्र घर की देहरी के भीतर ही क्यों न हों विद्रोह की आवाज़ उठाते हैं। लेकिन इस प्रतिरोध का कोई सकारात्मक पक्ष तो नहीं है। क्योंकि जीवन की सन्ध्यावेला में कहीं कुछ आवाज़ उठाने से वह घर के चारदीवारी के अन्दर ही अन्दर मिट जाती है।

अर्थ के कारण ही कहीं-कहीं लड़कियों को माता-पिता के निर्देयी लालची व्यापारी रूप का भी सामना करना पड़ता है। कृष्णा अग्निहोत्री की 'रमकलिया', 'बतासा' आदि कहानियों में यही चित्र है। आर्थिक विपन्नता के कारण ब्याह के नाम पर बाप कहीं बोटी को कुपात्र के हाथों बेचता है तो कहीं वेश्या व्यवसाय में जोत देता है। 'रमकलिया' कहानी का बाप अपनी नाजुक सुन्दर किशोरी बेटी का विवाह एक दैत्याकार पहलवान से कर देता है। यह विवाह नहीं विक्रय था। पिता को पूरे सात सौ रुपये मिले थे, उन्हें वर की सूरत से क्या लेना-देना था। उन्हीं की 'बतासा' कहानी में भी बाप का राक्षसी रूप उजागर हुआ है। भूखी-प्यासी छोटी लड़की को बाप गंजे के नशे में लतियाता

है। बाप के इस पशुवंत व्यवहार और भूख से मजबूर होकर बेटी पेशेवार चोर बनती है। बाल सुधार गृह में उसे भेजा जाता है। वहाँ उसे सिलाई की मशीन दी जाती है तो बाप उसे गिरवी रखकर चार सौ रुपये लाकर अपनी रखैल के साथ मौज उड़ाता है। बेटी के सुख की अपेक्षा निम्न वर्गीय बाप को पैसे का आकर्षण अधिक है। बाप कभी-कभी कसाई से भी अधिक क्रूर बन जाना है। मेहरुन्निसा परवेज़ की 'देहरी की खातिर' कहानी का शराबी बाप बेटियों के पालन-पोषण या शादी की ज़िम्मेदारी कभी नहीं उठाता। विवश बेटियां देह विक्रय करके घर चलाती हैं। जब अविवाहित बेटियां गर्भवती होती है तब बाप, बाप होने के अधिकार के प्रति सचेत होकर या तो पुरुषसत्ता के प्रतिरूप बनकर आधी रात को लड़की को धक्के देकर घर से बाहर निकाल देता है। पैसों के लिए बेटी के शरीर बेचने के लिए बाध्य करनेवाले नरपिशाचों का यह रूप, स्त्री जीवन का एक और कटु यथार्थ है। इस प्रकार स्त्री जीवन में 'अर्थ' के कई आयाम है। उपभोक्तावादी संस्कृति में स्त्री को विक्रय की वस्तु बनाने में 'अर्थ' की अपनी अह्म भूमिका है।

आधुनिक शिक्षा एवं स्वतंत्रता के परिणामस्वरूप स्त्री की ज़िम्मेदारियाँ बढ़ गयी हैं। स्त्री न केवल नौकरी करती है बल्कि घर की व्यवस्था भी देखती है और बच्चों के प्रति अपने कर्तव्य भी निभाती है। कामकाजी स्त्री घर की अर्थ-व्यवस्था में पति की सहायता करती है तो वह यह अपेक्षा भी रखती है कि पति तथा घर के अन्य सदस्य

उसकी सहायता करें किन्तु होता कुछ दूसरा ही है। कामकाजी स्त्री के रूप में प्रायः अविवाहित स्त्रियों का ही चित्रण अधिक हुआ है। इस विषय पर लिखी गयी कहानियाँ अधिकतर लेखिकाओं द्वारा लिखी गयी हैं। विवाह न होने के कारण नौकरी करना आम बात है। पर वे अविवाहित इसलिए रह जाती हैं क्योंकि वे नौकरी करती हैं। वही उसके जीवन की सबसे बड़ी विड़ंबना है, जिसको विविध कोणों से प्रस्तुत किया गया है।

स्वावलम्बी होने के कारण स्त्री यह महसूस करती है कि उसे अधिकार चाहिए - निर्णय लेने का, राह चुनने का। पुरुष युगों से प्राप्त अपने अधिकारों को इतनी जल्दी छोड़ नहीं पाता है। अतः दोनों के अधिकारों में टकराव शुरू होता है, और वहीं से भटकन का प्रारंभ भी दिखाई देता है। पुरुष ने झुकाव सीखा नहीं और स्त्री को झुकना स्वीकार नहीं है। परिणामतः या तो वह झुकने को स्वीकार कर दिन-ब-दिन हीनग्रस्त होने दे या फिर परस्पर संबन्धों के बीच बसे तनाव को टूटने का रूप दे दे। कहीं-कहीं वह इस टूटन को स्वीकार कर लेती है तो व्यक्तित्व की स्वतंत्रता की चाह उसे झुकने नहीं देती। समझौता करने का हर प्रयत्न इकहरी होने के कारण विफल हो जाता है।

पुरुष सत्तात्मक मूल्यों और रूढ़िबद्ध व्यवस्था को तोड़ना ही समकालीन महिला कहानीकारों का मूल उद्‌देश्य रहा है। पुरुष प्रधान

समाज में सदियों से विद्यमान दोहरी मानसिकता के जाल में फँसी स्त्री की मूक अन्तर्व्यथा को लेखिकाओं ने वाणी दी है। स्त्री द्वारा रचित रचना-संसार में कहीं-न-कहीं स्त्री का संसार दबता हुआ महसूस होता है। यह बात स्त्री की कल्पना नहीं है बल्कि स्त्री का यथार्थ है। पुरुषसत्तात्मक समाज में जीवित 'स्त्री' को पुरुष की दृष्टि में परिभाषित किया जाता है सिमोन द बोउवार के शब्दों में - "मानवता का स्वरूप पुरुष है और पुरुष औरत को औरत के लिए परिभाषित नहीं करता बल्कि पुरुष से संबन्धित ही परिभाषित करता है। वह औरत को स्वायत्त व्यक्ति नहीं मानता। यहाँ तक कहा जाता है कि औरत अपने बारे में नहीं सोच सकती और वही बन सकती है, जैसा पुरुष उसको आदेश देगा। इसका अर्थ यह है कि वह अनिवार्यतः पुरुष के लिए भोग की एक वस्तु है और इसके अलावा कुछ नहीं। वह पुरुष के सन्दर्भ में ही परिभाषित और विभेदित की जाती है। वह आनुषंगिक है, अनिवार्य के नैमित्तिक है, गौण है। पुरुष आत्म है विषयी है, पूर्ण है, जबकि औरत बस 'अन्या' है।"[1]

हमारी सांस्कृतिक दृष्टि में पुरुष बोध सशक्त है। पुरुष बोध का सीधा संबंध अधिकार से है। अधिकार का विकेन्द्रीकरण कोई नहीं चाहता है। तभी वह संस्कृति बहुतों को हाशिए के बाहर कर सकती

---

1. सिमोन द बोउवार - द सेकेंट सेक्स - अनु. प्रभा खेतान - स्त्री उपेक्षिता - (1991), पृ. 25

है। सदियों से हमारी संस्कृति के हाशिए के बाहर स्त्री खड़ी रही। इसलिए उसका यौवन आनन्दप्रद लगा। उस आनंद के बीच-बीच की संस्कृति की यह अपसंस्कृति सुदृढ़ थी कि स्त्री पुरुष के अधीनस्थ ही रह सकती है। समकालीन कहानी ने समय के साथ चलते हुए इस भ्रम को जोड़ा है। सामाजिक बदलाव का रचनात्मक रूप ही महिला कहानीकारों की रचनाओं में दिखता है।

अध्याय : चार

समकालीन महिला कहानीकारों की कहानियों में उभरती स्त्री का संघर्षशील स्वरूप

समकालीन महिला कहानीकारों की कहानियों के स्त्रीपात्रों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे प्रतिकृत होती हैं। उनकी प्रतिक्रियाएँ मात्र व्यक्तिगत नहीं हैं। वे अहंग्रस्त भी नहीं हैं। ये स्त्रियाँ अपने-अपने दायरे में सिमटी हुई प्रतीत होती नहीं हैं। समाज के सभी तबकों की स्त्रियों को महिला कहानीकारों ने प्रस्तुत किया है। यह स्त्री-समाज या स्त्री मानसिकता के वैविध्य को दिखाने के लिए है। चाहे तबका कोई भी हो, सामजिक एवं आर्थिक स्थिति जैसी भी हो इनमें स्त्री है, वे अपनी मौन-भूमिका में नहीं हैं। इन कहानियों के माध्यम से यह सिद्ध होता है कि स्त्री की मौन-उपस्थित के स्थान पर स्त्री की मुखर उपस्थिति आज प्रत्यक्ष लक्षित होती है। इसमें हमारे समाज के संक्रमण को भी लक्षित किया जा सकता है। यह स्त्री के एकाएक विस्फोटित होने का कोई कृत्रिम उदाहरण नहीं है। उसकी मुखरता में हमारा पूरा इतिहास समाया हुआ है। "स्त्रियाँ अब पुरुषों के हाथ का खिलानौ नहीं रह गयी हैं। आज की स्त्रियाँ उद्‌बोधित हो गयी हैं और उनमें जागृति भर उठी है। स्त्रियाँ अपने अधिकारों की मांग इसलिए नहीं कर रही हैं कि उन्हें पाकर किसी के प्रति अत्याचार किया जाय। बल्कि हमें तो अपने अधिकारों को प्राप्त करने की आवश्यकता इसलिए है जिससे

कि हम अपने उन उत्तरायित्वों का पालन कर सकें जो हमारे अधिकारों से संबद्ध है।"[1]

स्त्री-संघर्ष का प्रभाव

आधुनिक समाज अनेकायामी परिवर्तनों से गुज़रा है और अब भी गुज़र रहा है, परन्तु इन परिवर्तनों की श्रृंखला में सबसे व्यावहारिक और स्पष्ट प्रभावी दिखनेवाला बदलाव स्त्रियों से संबद्ध रहा है। यह बदलाव सदियों से चली आ रही जीवनस्थितियों को नये ढ़ंग से सामने लाता है। वास्तव में स्त्री की जागृति और सशक्तीकरण का प्रभाव वैश्विक धरातल पर हुआ है। महिला कहानीकारों ने इन्हीं बदलावों को अपनी सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के परिप्रेक्ष्य में परखने का प्रयास किया है। अनामिका के अनुसार - "यह निरा प्रतिक्रियावाद नहीं है। दूसरी-तीसरी पीढ़ी के स्त्रीवादी प्रतिरोधों को निरे प्रतिक्रियावाद से कोई लेना-देना नहीं है। यह एक सुलझी हुई शान्त सुव्यवस्थित दृष्टि है समन्वय की - प्रकृति और पुरुष, जल और अग्नि, अंतर्जगत और बहिर्जगत जहाँ एकलय रहें - अपनी अलग अस्मिताओं के पूर्ण वैभव समेत। समझने की मूल बात है कि स्त्री और पुरुष की लड़ाई का व्याकरण लड़ाई के और व्याकरणों से ज़रा अलग है। सामंतों और

---

1. सं. जगदीश्वर चतुर्वेदी, सुधा सिंह - स्वाधीनता संग्राम हिन्दी प्रेस और स्त्री का वैकल्पिक क्षेत्र सरोजिनी नायडू - स्त्रियों को खिलौना न समझो (लेख), 2006 - पृ. 150

आसमियों, पूँजीवादियों और मज़दूरों, औपनिवेशिक ताकतों और शोषितों के बीच जो संघर्ष होता है - उनके हित निकाय अलग-अलग होते हैं। स्त्री और पुरुष की लड़ाई एक ऐसी लड़ाई है जिसमें सत्ता का हस्तान्तरण उतना अहम मुद्दा नहीं, जितना दृष्टियों और व्यक्तियों का शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व और सामंजस्य का।"[1] महिलाओं के लिए लेखन कई रूपों में सामने आता रहा है। कुछ महिला-लेखन में स्त्रियों को परंपरागत गुणों से परिपूर्ण करने का प्रयास मिलता है। वहाँ स्त्री मानसिक एवं शारीरिक तौर पर पुरुष के अधीन महसूस होती है। अधिकतर लेखिकाओं में अपने पात्रों को समकालीन जीवन-बोध से संपृक्त कराने की कोशिश दिखाई देती है।

महिला कहानीकारों ने स्त्री को स्त्री (इंसान) के रूप में प्रस्तुत किया है। आज महिला-लेखन के यही प्रमुख सरोकार और विचार है कि स्त्री को मूल रूप में पहचाना जाए। मृदुला गर्ग ने लिखा है - "इस औरत तर्क की पहली शर्त यह है कि औरत पर थोपी गयी नैतिक कलई को खुरच कर भीतर के इंनसान को पहचाना जाए।"[2] आज की लेखिकाओं में तथा उनकी कहानियों में चित्रित स्त्री पात्रों में तनिक भी लाचारी, बेबसी और अपने प्रति करुणा बटोरना का अतिरिक्त प्रयास नहीं है।

---

1. आजकल (पत्रिका) मई 1997 - पृ. 47
2. सं. पुष्पपाल सिंह - महिला कहानीकार प्रतिनिधि कहानियाँ (1999) पृ. 11

लेखिकाओं ने अपने पात्रों में दीनता का भाव प्रायः बन्द कर दिया है। इसका स्थान जीवन संघर्ष ने ले लिया है। स्त्री की बेबसी प्रतिरोध एवं विद्रोह में बदल गयी है। जीवन की हादसे को भी सहज रूप से लेना उसने सीख लिया है। स्त्री का पत्नी, विधवा आदि रूपों में भी बदलाव परिलक्षित होते हैं। आज स्त्री नैतिक मूल्यों को चुनौती दे रही है। आधुनिक युग में परिवार छोटे हुए, परिणामतः परिवार में निर्णय की प्रक्रिया में स्त्री की भूमिका भी महत्वपूर्ण होने लगी। व्यक्ति अधिक व्यक्तिनिष्ठ हो गया। व्यक्तिगत इच्छाओं की पूर्ति के लिए संतान विघ्न बनने लगी। पुरुष पितृत्व को टालने लगा। मातृत्व कब स्वीकार करें इसका निर्णय स्त्री लेने लगी। मृदुला गर्ग की 'मेरा' कहानी इसी विषय पर आधारित है। वैवाहिक जीवन की पहली शर्त है कि दोनों अपने-अपने व्यक्तित्व को, अस्मिता को सुरक्षित रखते हुए एक दूसरे के प्रति समर्पित हों। पुरुष स्त्री के व्यक्तित्व पर हावी होना चाहता है। स्त्री कठपुतली की हद तक समर्पित होना नहीं चाहती। ममता कालिया की 'पीली लड़की' में इन्हीं बातों पर प्रकाश ड़ाला गया है। पुरुष संस्कृति ने ऐसी मूल्य व्यवस्था का निर्माण किया है जिसमें सारे निर्णय पुरुष ही लेता है चाहे स्त्री कितनी भी पढ़ी-लिखी क्यों न हो। आज की शिक्षित स्त्री पुरुष सत्ता को चुनौती दे रही है। परिवार की चौखट बनाये रख कर अपने न्यायसंगत स्थान को प्राप्त कर लेने की छटपटाहट उसमें है। इसीलिए वह पति को अपने इच्छानुकूल

निर्णय लेने के लिए बाध्य करती है। इसके बावजूद पति अपनी पत्नी की अस्मिता को नकारता है तो वह अलग हो जाती है। अब अलग होकर स्वतंत्र, अकेली होकर जीने में उसे कोई हिचहिचाहट नहीं है। 'पीली लड़की' में लेखिका ने आज की स्त्री के बारे में लिखा है - "औरतें पति को अंगूठी और ब्लाउज़ के साथ-साथ निजी पूँजी ही समझती है और अवसर सोचती है कि दुनिया भर की लड़कियाँ उनके पति पर ड़ाका ड़ालनेवाली है। औरतों के बीच काम करते-करते मैं उनकी नस-नस पहचान गई थी। मुझे लगता था औरतों के स्वभाव पर मैं शोध प्रबन्ध तैयार कर सकती है। कॉलेज की एक सौ तीन प्राध्यापिकाओं में मैने हर तरह की औरत देख ली थी, शास्त्रीय भाषा में कहुँ तो लेड़ी मैकबेथ से लगा कर एना कैरिनीना तक। अबतो मैं मान बैठी थी कि औरत के अन्दर स्वभावगत चुड़ैलपन होता है। जो दूसरों को चैन से जीने नहीं देता है।"[1]

लेखिकाओं ने विधवाओं की परिवर्तित मानसिकता की ओर भी प्रकाश ड़ाला है। विधवा का पुनर्विवाह की सहमति और उसे प्रोत्साहन भी दिया जा रहा है। बावजूद अपने प्यार और निष्ठा को बदल कर किसी दूसरे के साथ जुड़ने में स्त्री को एक विचित्र छटपटाहट से गुज़रना पड़ता है। मंजु भगत की 'पारुल के लिए' कहानी की

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ (खंड-1) पीली लड़की (कहानी) 2005 - पृ. 167-168

विधवा अपनी बेटी के भविष्य को ध्यान में रखकर पुनर्विवाह नहीं करती। पर जब उसे पता चलता है कि उसकी बेटी और दामाद जायदाद हड़पने के लिए कुछ भी कर सकते हैं तो अधेड़ अवस्था में पच्चीस-छब्बीस वर्ष के युवक से विवाह करती है और वसीयत बदल डालती है। कुसुम अंसल की 'मात्र एक मकान' की सुधा एक विवाहित पुरुष के साथ जीती है। किसी नैतिक मर्यादाओं का भार उसके मन में नहीं है। वह कहती है "सबसे बड़ा पाप क्या है? अपने को किसी एक खास दायरे में संकुचित कर लेना, फिर उसकी पृष्ठभूमि में सोचना। जीवन को दायरों में नहीं बाँधना चाहिए, उसे तो सच्चाई से खोलकर जीना चाहिए, वह बात दूसरी है कि आप उसे अपने सोचे हुए किसी भी तरीके से जीना चाहें। हर मनुष्य तभी तक अपना जीवन जीने के स्वतंत्र है जब तक उसकी जीवन पद्धति किसी को कोई कष्ट नहीं पहूँचाती। हमारा कष्ट यही है हम दूसरे के जीवन को अपने विचारों से तौलते हैं.... प्रत्येक चरित्र को वैसे ही स्थापित करते हैं जैसा हम चाहते हैं, उनसे व्यवहार भी तो वैसा करते हैं, जैसा हमारा मन विचार कर पाता है...."[1]

समकालीन कहानी में चित्रित विधवा घुट-घुटकर जीनेवाली स्त्री नहीं है। वह स्वावलंबी बनने के लिए प्रयत्न कर रही है।

---

1. कुसुम अंसल - पते बदलते है (क.सं) - एक मात्र मकान (कहानी) (1983) - पृ. 61

पुनर्विवाह के लिए वह तैयार है। हीनताग्रंथि से त्रस्त होकर जीने के बजाय वह पूरी ऊर्जा के साथ अपने भविष्य जीवन में अकेली या और किसी के साथ वैवाहिक जीवन व्यतीत करना चाहती है और कभी-कभी शादी न करते हुए शारीरिक स्तर जुड़कर जीने को तैयार है। पहले की विधवा के पास केवल अतीत होता था। उसका भविष्य केवल अंधेरी गुफा में खो गया था। अपमान और तिरस्कार उसका वर्तमान था। आज की विधवा के पास एक भविष्य है, संघर्षमय वर्तमान भी है। समकालीन लेखिकाओं ने स्त्री के मानवी रूप को ही देखा और उसी रूप का चित्रण अपनी कहानियों में किया है। "मौजूदा समय में जब औरत पुरानी केंचुल उतार चुकी है। उस समय समाज की जड़ता का टूटन बहुत ज़रूरी है। समाज की मानसिकता के बदलने का अर्थ है कुंठा रहित जीवन जिसका सपना हर दंपती देखता है। मर्द औरत को, रिश्ते में वह जो भी हो, 'नई औरत' को देखने का अपना दृष्टिकोण बदलना होगा वरना समाज की पुरानी मान्यताएँ नहीं पीढ़ी के लिए सलाखों में बदल जाएँगी।"[1]

स्त्री संघर्ष का सामाजिक परिप्रेक्ष्य

परंपरागत चरित्र समाज की वास्तविकता है। इस यथार्थ को लेकर रचनाकारों ने भी अनेक कहानियाँ लिखी हैं। समाज में पुरुषों

---

1. नासिरा शर्मा - औरत के लिए औरत (2003) - पृ. 153

की तुलना में स्त्री अधिक सनातनी और परंपरावादी होती है। संस्कार, सामाजिक परिस्थिति, सीमित जीवन क्षेत्र और प्राचीन जीवन शैली के कारण वे अधिक परंपरावादी बनती हैं। समाज भी स्त्री को इसी रूप में देखता है। लेकिन समकालीन समाज की मान्यताओं के कारण स्त्री की सामाजिक स्थिति सशक्त हुई है। स्त्रीवादी विचारधारा के प्रभाव के कारण इन लेखिकाओं की कहानियों में स्त्रीवादी दृष्टि भी व्यक्त होने लगी है। अतः समकालीन कहानी में स्त्री की क्षमता की पहचान प्रमुख विशेषता बनकर उभरी है। इस काल की कहानियों में मध्य एवं निम्न मध्यवर्गीय स्त्रियों का चित्रण अधिक हुआ है। स्त्री की मानवतावादी भावना और मानवीय दृष्टि का चित्रण भी इनकी कहानियों में हुई। इसका सामाजिक परिप्रेक्ष्य ही अधिक मूल्यवान है। स्त्री मन की सूक्ष्म और प्रामाणिक अभिव्यक्ति इनकी कहानियों को विशिष्ट पहचान देती है। स्त्री के विशिष्ट अनुभव अपनी प्रामाणिकता के साथ सामाजिक यथार्थ के धरातल पर अभिव्यक्त हुए हैं। "सामाजिक यथार्थ रचना की आधारभूमि मात्र नहीं है। रचना की समस्त संभावनाओं के साथ जुड़ा एक गहन यथार्थ है जो श्रेष्ठ रचना की सृजनात्मक मनोभूमि है। ऐसी रचनाओं में सामाजिक यथार्थ तत्कालीन यथार्थ भर नहीं है। उसमें यथार्थ कई प्रकार के रूपान्तरण के लिए बाध्य हो जाता है। यथार्थ का यह रूपान्तरण इतिहास की अनुस्यूतता का दस्तावेज़ है।"[1] महिला

1. ए. अरविन्दाक्षन - रचना के विकल्प (2006) पृ. 56

कहानीकारों की स्त्री-यथार्थ को हमारे समय के समाज के यथार्थ के इतिहास के साथ परखना है।

कुसुम अंसल की कहानी 'उत्क्रमण' के केन्द्र में निम्न वर्गीय स्त्री का चित्रण है। उस वर्ग की स्त्री को दो प्रकार के अत्याचार सहने पड़ते हैं। एक, निम्न वर्ग की होने का और दूसरा, स्त्री होने का। 'उत्क्रमण' की कल्याणी एक ऐसी चरित्र है जो हालत के साथ 'एड़जेस्ट' करने को तैयार है। निम्न वर्ग में जन्म लेने पर भी कुछ विशेष परिस्थिति में वह उच्च कुल में जीवन बिताती है। परिणामस्वरूप उसे शिक्षा मिलती। लेकिन नियति के खेल ने उसे फिर पुरानी गली में ही लौटा दिया। 'एक माँ की मौत कल्याणी को इस शहरी परिवेश तक लाई थी दूसरी माँ की मौत उसे फिर से पुराने छोड़े हुए परिवेश में लौटा रही थी।"[1]

कल्याणी सामाजिक बुराइयों के प्रति एक विद्रोही दृष्टि रखनेवाली स्त्री है। गाँव के स्कूल में वह कई अच्छे परिवर्तन लाती है। गाँव के मुखिया एवं मन्दिर के पूजारी से नीति के लिए वह निड़र होकर लड़ती है। उस गाँव में अभी तक कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं था जिसमें पुजारी के सामने मुँह खोलने की ताकत हो। कल्याणी उससे यह पूछ सकी - "क्यों मार रहा है इसको, सब बच्चे एक जैसे होते हैं, नासमझ। अगर

---

1. कुसुम अंसल - धुएँ की ईमानदारी (क.सं) - उत्क्रमण (कहानी) (1999) - पृ. 37

तुम्हारा बेटा इसकी जगह मन्दिर से उठाकर प्रसाद खा लेता तो क्या उसे भी इतनी ही बेरहमी से मारते.... शर्म लिहाज कुछ नहीं है तुम्हें?"[1]

गाँव में बहरहाल एक स्त्री की आवाज़ मुखर होती है। उस पर दबाव डालने के लिए पूरा गाँव उसके विरोध में खड़ा हो जाता है। फिर भी कल्याणी को ड़राने में वे पराजित होते हैं। लेकिन कल्याणी को एक क्षण के लिए ऐसा एहसास हुआ कि अपना अस्तित्व नष्ट हो रहा है। किन्तु एक लम्हे के अनन्तर वह सोच लेती है कि - "क्या करें? नहीं, वह अपने जीवन की इस स्थिति या जीवन के समूचे विषयवस्तु से पलायन नहीं करेगी, भागोगी नहीं। यदि जीवन में इतनी विविधताएँ हैं तो उन्हें झेलना ही होगा।"[2] अधिकांश व्यक्ति ऐसे हैं जो दुविधा का सामना करते समय पलायन कर जाते हैं। लेकिन कल्याणी दुविधा की स्थिति में अधिक ताकतवर होती है। कल्याणी के माध्यम से सही समय, सही अवसर पर प्रतिकृत होती स्त्री को दिखाने का कार्य किया गया है।

राजीसेठ की 'अकारण तो नहीं' कहानी की दीपाली अपने पति के साथ प्रसन्नतापूर्वक रह रही थी। परन्तु जब वह अनुभव करती

---

1. कुसुम अंसल - धुएँ की ईमानदारी (क.सं) - उत्क्रमण (कहानी) (1999) - पृ. 40-41
2. वही - पृ. 41

है कि उसका पति सुधाकर धीरे-धीरे उसके अधिकारों को छीनता जा रहा है तो वह विद्रोह करने का निर्णय ले लेती है। दीपाली को संतान न हो सकने के कारण एक ओर सास का तो दूसरी ओर पति सुधाकर का व्यवहार तनाव दे रहा है। सास तो इसलिए तनाव दे रही है कि उसे बताया गया है कि दोष दीपाली में है। मेड़िकल परीक्षण के बाद पति द्वारा बोला गया झूठ दीपाली को अनन्त पीड़ा देता है। शुक्राणु तो सुधाकर के कमज़ोर हैं, परन्तु आत्मछवि की सुरक्षा हेतु सुधाकर झूठ पर झूठ बोले जा रहा है। दीपाली को इस बात पर आश्चर्य है कि उससे उसका सच बोल सकने का अधिकार तक छीन लिया गया है जिसके कारण वह बांझ घोषित होती है। वह सुशिक्षिता है, अपना भला-बुरा सोचती है, अपने अधिकार जानती है - अतः वह सतर्क हो उठती है - "यानी कि मैं कोई स्त्री नहीं, नांद हुँ जिसमें तुम्हारी पुश्तों का चारा धरा रहे। एक निर्जीव जैसी वस्तु, जो भेजी और लायी जाती रहे जिस हिसाब से जिस किसी को उसकी ज़रूरत हो।"[1] जिस प्रकार दीपाली पुरुष के कमज़ोरी एवं निर्दयता के कारण, बंजर घोषित किये जाने पर विद्रोहिनी होकर गृह त्याग करती है, उसी प्रकार की स्थिति थोड़े से परिवर्तन के साथ 'उसी जंगल में' कहानी में भी है। जहाँ पति की बदचलनी से तंग आकर विवशता में अर्थात्, गर्भावस्था में भी स्त्री गृह त्याग देती है। स्त्री अपने सम्मान के लिए तड़प रही है और पुरुष

---

1. राजी सेठ - यह कहानी नहीं (क.सं), 1986 - पृ. 74

यहाँ आततायी है - "लगाव से अधिक अधिकर की हिंसा से पीस दिये जाना। उस तरह की सब रातें.... सुख से नहीं, दहशत से मन पर चिपकी मिलती हैं। उसने खुद ही मर्माहत हो कर कितनी बार सोचा कि वंशबल बढ़ेगी भी तो किसकी... कैसे लोगों की..."[1] यही नहीं, वह अपने पति के संपर्क में आयी नयी औरत पर होनेवाले अत्याचार की कल्पना करके भी भयभीत हो उठती है। लेकिन तनाव से मुक्ति के लिए संघर्ष ज़ारी रखती है, परन्तु आर्थिक संरक्षण तो चाहिए ही, विशेषकर तब, जब वह गर्भावस्था में है। वह स्वावलंबन के मार्ग के बारे में सोचती है और वह अध्यापिका बन जाती है। परन्तु नौकरी के लिए संतान को किसी के पास छोड़ना पड़ता है। 'बच्ची उसे अब तक 'बुआ' कहकर बुलाती है। शुरू से ही ऐसा चलता आया है। बचपन में सोमा भाभी उसे खिलाते-खिलाते अपने घुटने पर बिठा लेती और पूछती "बुआ अच्छी है या मम्मी?" तब वह बच्ची का मुँह देखने की बजाय भाभी का मुँह टटोलती होती - कोई सन्देह, कोई अपराधभाव, कोई अनिश्चय.... तनिक सा भी उनके चेहरे पर नज़र नहीं आता था... असंदिग्ध छलकता हुआ चेहर। "मम्मी अच्ची!" वह सोमा भाभी के गले में झूल जाती। सोमा भाभी निहाल हो जाती। अपेक्षा का वह छोटा पर दमघोंट तनाव उसके भीतर बुलबुले की तरह बैठ जाता।"[2]

---

1. राजीसेठ - यात्रामुक्त (क.सं) - उसी जंगल में (कहानी) - पृ. 74
2. राजी सेठ - यात्रा मुक्त (क.सं) - उसी जंगल में (कहानी) (1987) - पृ. 77

स्त्री जागृति स्त्री की मानसिकता में ही निहित है। हमारी पुरानी स्त्रियों की महत्वाकांक्षाएँ मुख्यतः पति और पुत्र, परिवार और निजी इच्छाओं पर केन्द्रित थी। आज की सचेत और जागरूक स्त्री परिवार से जुड़कर समाज के लिए कुछ करना चाहती है। यदि किसी का पति उसकी इच्छा के विरुद्ध घर तोड़ता है तो उसमें इतनी काबिलियत होनी चाहिए कि घर के टूटने को वह व्यक्तित्व के टूटुने के रूप में लेने से बच सके।

जिस प्रकार एक पौधे को अपनी जगह से निकालकर अन्य किसी जगह पर रोप दिया जाए तो उस पौधे का आगे का विकास नयी जगह के वातावरण के अनुकूल ही रहेगा। उसी प्रकार एक जगह से बिल्कुल अन्य वातावरण में जानेवाली स्त्री की स्थिति भी ऐसी ही है। भारतीय परंपरा के अनुसार स्त्री का घर वास्तव में पति का घर होता है। जन्म से लेकर बीस-पच्चीस वर्ष बिताये गये पूरे वातावरण को छोड़कर उसे बिल्कुल अपरिचित वातावरण के साथ 'एड़जेस्ट' करना पड़ता है। शादी वास्तव में ज़िन्दगी की सबसे प्रमुख घटना है। फिर भी उसके संबन्ध में अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करने का अधिकार स्त्री को प्राप्त नहीं है। मजबूरी के कारण अधिकांश स्त्री घरवालों द्वारा चुने गये किसी पुरुष के सामने सिर झुकाती है। अगर स्त्री के मन में कोई रुचि न हो तो, ससुराल के वातावरण कैसे भी हो, वह 'एड़जस्ट' करती है। हमारे समाज में शिक्षित एवं कामकाजी महिलाओं को भी अपनी

ज़िन्दगी के संबन्ध में फैसला लेने का अधिकार नहीं है। अपनी आशाओं एवं आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए स्त्री को काफी कुछ सहना पड़ता है। उनकी सारी आकांक्षाएँ 'रेतमहल' बनकर ही रह जाती हैं।

मालती जोशी ने 'रेतमहल' शीर्षक कहानी के द्वारा स्त्री की इस बदहालत की अभिव्यक्ति बहुत प्रभावपर्ण ढ़ग से की है। स्त्री के मानसिक दबाव को प्रस्तुत करने के लिए लेखिका ने मनोवैज्ञानिक धरातल का सहारा लिया है। प्रस्तुत कहानी में मीरा नामक एक कामकाजी महिला के चरित्र को ही मनोवैज्ञानिक ढ़ग से प्रस्तुत किया गया है। ज़िन्दगी की सारी खुशियों को नष्ट करके मीरा अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करती है।

अपने पेट में अंकुरित नवजीवन की खून करने की मानसिकता के साथ खड़ी मीरा के चित्रण के साथ ही कहानी समाप्त होती है। "ड़िलीवरी सारी समस्याओं का अन्त तो नहीं है। बल्कि वह तो शुरुआत है। क्या हम एक नई ज़िम्मेदारी लेने लायक है?"[1] उसके पति आलोक की तरफ से विचार करने पर मीरा गलत सिद्ध हो सकती है। मीरा के मन में ऐसा पाप-चिन्तन कैसे आ गया? कहानी का इतिवृत्त बच्चे को पेट में ही खून करने की उसकी मानसिकता की घटनाओं पर आधारित है।

---

1. सं. मंगला रामचन्द्रन, स्वाति तिवारी - ज़मीन अपनी-अपनी (क.सं) - मालती जोशी - रेतमहल (कहानी) (2001) - पृ. 64

घरवालों की ज़बर्दस्ती के कारण मीरा आलोक के साथ शादी के लिए तैयार हो जाती है। परिवारवालों की ज़बर्दस्ती ने उसके मन पर गहरी चोट पहुँचायी कि ससुराल का वातावरण अच्छा होने के बावजूद अपने को उस वातावरण के साथ जोड़ने में वह असफल हो जाती है। अपने ही घर पर प्यार के दो बोल उसके लिए दुर्लभ हो जाते हैं। मीरा को अपने बचपन में ही बहुत उपेक्षा सहनी पड़ी। तीसरी कन्या के रूप में जन्म लेने का अपराध और जन्म के आसपास ही पिता की 'कम्पल्सरी रिटायरमेंट' आदि बातें घरवालों की उपेक्षा का कारण बना। पढ़ाई की पूर्ति के लिए तथा काम पाने के लिए उसे कई मुशकिलें झेलनी पड़ीं। पिता के निधन के बाद, भाई के होने के बावजूद, घर का सारा खर्च और शादी का खर्च भी उसे खुद लेना पड़ा। लेकिन उसकी शादी के सन्दर्भ में उसकी इच्छा के अनुरूप वर ढूँढ़ने का कार्य घरवालों ने नहीं किया। घरवालों की जबर्दस्ती के सामने उसे 'हाँ' कहना पड़ा। पहले, उसकी तिरस्कार भरी भावना को देखकर माँ उससे पूछती है - "तेरे मन में क्या है, आखिर पता तो चले। तू कब तक मेरी छाती पर मूँग दलती रहेगी। तेरी वजह से यहाँ पड़ी हूँ। तू एक बार दफा हो जाए तो बेटे के घर बैठकर आराम से पोते-पोती खिलाऊँगी। पता नहीं मेरी तकदीर में वह दिन लिखा भी है या नहीं।"[1] खुद माँ ही अपनी बेटी को बोझ मानती है।

---

1. ज़मीन अपनी - अपनी (क.सं.) - पृ. 57

उपेक्षा, ज़बर्दस्ती, मजबूरी ने मिलकर मीरा की मानसिकता को ऐसा मोड़ प्रदान किया कि जिससे उसे अपनी ज़िन्दगी को भी नष्ट करना पड़ा। मीरा के मन में अपनी ज़िन्दगी के प्रति कई महत्वाकांक्षाएँ थीं। लेकिन सब इस तरह टूट गयीं जिसे फिर जोड़ देना मुश्किल हो गया।

'रेतमहल' की मीरा पाठकों को यह सोचने के लिए विवश करती है कि क्या शादी ही स्त्री जीवन के सामने मात्र एक विकल्प है? क्या शादी के बिना स्त्री जीवन अपूर्ण रहेगा? स्त्री हो या पुरुष, अपनी ज़िन्दगी के संबन्ध में फैसला लेने का अधिकार हर व्यक्ति में है। मीरा के मन की प्रतिशोध भावना महज अपने घरवालों से नहीं है, बल्कि पूरे समाज से है।

हमारे समाज ने स्त्री के अस्तित्व को सदैव नकारा है, भले ही आज उसमें हल्का सा परिवर्तन ज़रूर आया हो। अतः स्त्री का मन दबावपूर्ण वातावरण से मुक्त नहीं है। इस अवस्था ने स्त्री की मानसिकता में विद्रोही स्थिति पैदा की है। पुरुष वर्चस्वी समाज के कारण ही ऐसा होता आ रहा है। आज स्त्री पुरुष के समकक्ष चलने में सक्षम हो गयी है। मधु कांकरिया की 'लेड़ी बॉस' इसी विषय पर केन्द्रित एक कहानी है। प्रस्तुत कहानी की स्त्री दूसरों के मध्य अपने को स्थापित करने के कठिन प्रयत्न करती दिखाई देती है। उसके मन में ऐसा विचार रूढ़ हो

गया है कि महिला को अफसर के रूप में स्वीकारने के लिए लोग तैयार नहीं हैं। एक 'इंटरव्यू' में वह अपना यह विचार प्रकट भी करती है.... "महिला बॉस को लोग एक्सेप्ट नहीं कर पाते हैं, इस कारण स्टॉफ को कन्ट्रोल करने में अतिरिक्त एनर्जी खपानी पड़ती है"[1] इस तरह के विचार के कारण वह ज्यादा सख्त हो जाती है। जिससे कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं। लेकिन यह पुरुष के अधिकार को स्वीकार नहीं कर पाती। उसके मन में अपनी कम्पनी के प्रति कई सपने हैं। दूसरों के सामने कुछ कर दिखाने की चाहत भी है। इसलिए उसने कम्पनी को अपना बच्चा जैसा मान लिया है और जिन्दगी में अपने लिए एक बच्चे को होना पसन्द नहीं करती। अपनी पारिवारिक भूमिकाओं को न निभा पाने एवं अपने काम में ही डूबे रहने के कारण उसका पति उसे छोड़ देता है और एक दूसरी से शादी कर लेता है। इसमें पुरुष की मानसिकता भी व्यक्त होती है कि चाहे पत्नी बाहरी दुनिया में कितने ही बड़े पद पर आसीन ही क्यों न हो। घर पर पत्नी उसके बच्चों की माँ ही होनी चाहिए।

प्रस्तुत कहानी की पात्रा ऐसी ही एक स्त्री है जो अपनी कंपनी की उन्नति के लिए अपने पारिवारिक जीवन की आहुति तक दे देती है। हमारा समाज स्त्री की ऐसी भूमिकाओं को स्वीकार नहीं कर पाता है

---

1. मधु कांकरिया - बीतते हुए (क.सं) - लेड़ी बॉस (कहानी) 2004) - पृ. 43

क्योंकि ऐसी दिलेर स्त्रियों का उभर आना उनके लिए उलझन का विषय है। ऐसी स्त्रियों से प्रेरणा ग्रहण कर अन्य स्त्रियाँ भी नई भूमिकाओं में अंतर आ सकती हैं। इसलिए ऐसी स्त्रियाँ उनकी जानी दुश्मन हो जाती हैं और इन्हें पैरों तले रौंदने की कोशिश ही समाज की ओर से होती है। यहाँ रमणिका गुप्ता का कथन सार्थक है - "पुरुष के मुकाबले में कोई पुरुष हो तो उन्हें अपनी क्षमता का फरक उन्नीस था बीस ही नज़र आता है। लेकिन अगरा औरत खुद मुख्तार होकर सामने खड़ी हो जाए, वह भी निर्णय ले सकने वाली औरत, तो चाहे बिन चाहे वह हीन भावना से दब जाता है और उसे अपनी तुलना में वह औरत बाईस लगने लगती है। ईर्ष्यावश शत्रुता का अंकुर मन में जन्म लेता है।"[1] स्त्री जानती है कि बरसों से उसका कार्यक्षेत्र घर ही रहा है। कई प्रकार के संघर्षों के द्वारा अगर वह उस मुकाम तक पहुँच जाती हैं, जहाँ पुरुष केवल अपना अधिकार जमाए बैठा है, फिर उसे कोई एहमियत नहीं दी जाती। पुरुषों द्वारा और खुद स्त्रियों द्वारा। क्योंकि परंपरा ने और हमारी व्यवस्था ने यही सिखाया है कि परिवार, पति, बच्चे ही उसका पहला और अन्तिम गन्तव्य है। लेड़ी बॉस अपने दफ्तर के कर्मचारियों के साथ सख्ती से पेश आती है, कहीं भी कोई छूट देने के लिए तैयार नहीं होती। इस प्रकार वह उन्हें यह एहसास

---

1. रमणिका गुप्ता - हादसे - पृ. 15

दिलाना चाहती है कि वह महज स्त्री ही नहीं बल्कि एक ईमानदार एवं कार्यकुशल अफसर भी है।

'लेड़ी बॉस' की पात्रा आधुनिक होने के बावजूद भी परंपरा के बन्धन से पूर्णतः मुक्त नहीं है। अपनी ज़िन्दगी में सफल अफसर होने के साथ-साथ वह एक सफल पत्नी एवं सफल गृहणी नहीं बन सकी। उसे इसकी पीड़ा सताती है। लेखिका ने कहानी में संकेत किया है - "तीर्थयात्रा, साधु संगम, धर्मग्रन्थों का अध्ययन आदि का सिलसिला भी कुछ दिन चलाया। लेकिन प्रखर बौद्धिकता ने धार्मिक संवेदना भी सुखा ड़ाली थी। कभी किसी इंसान के प्यार की ख्वाहिश तो कभी किसी बच्चे की मुस्कान की चाह को लेकर कलेजे में एक हूक उठा करती तो कभी गहरी आत्मीयता एवं अंतरंग बात करने को दिल तड़पता।"[1] इस पीड़ा के पीछे उसका यही पारंपरिक भ्रम है कि वह ज़िन्दगी में बहुत कुछ हासिल करने के बाद भी बिना पत्नी के, बिना माँ के अधूरी है और समाज ऐसी स्त्रियों की कद्र नहीं करता।

समाज में स्त्री की सुधार के लिए कई प्रावधान उपलब्ध हैं। लेकिन उसकी व्यावहारिकता पर प्रश्नचिह्न लगा हुआ है। आधुनिक महिलाओं की ज़िन्दगी में कई-नई भूमिकाएँ जुड़ जाती हैं। लेकिन अफसोस की बात है कि बरसों बाद भी पुरुष के मन में स्त्री का

---

1. मधु कांकरिया - बीतने हुए (क.सं) - लेड़ी बॉस (कहानी) 2004 - पृ. 46

पारंपरिक रूप ही विद्यमान है। प्रभा-खेतान ने अपनी आत्मकथा 'अन्या से अनन्या' में स्पष्ट किया है खुद उनकी ज़िन्दगी में ऐसे कई अनुभव एवं घटनाएँ घटित हुई जो कि उन्हें अपनी औरत होने की सीमाएँ समझा देतीं। पढ़ी - लिखी स्त्रियों को मुख्यधारा में बने रहने के लिए बेहद संघर्ष करना पड़ता है। अनेक सुधारपूर्ण परिवर्तनों के बावजूद भी हमारी सामाजिक वातावरण 'स्त्री' के अनुकूल नहीं है। इन स्थापित सामाजिक, सांस्कृतिक संस्थाओं की स्त्री-विरोधी प्रकृति पर टिप्पणी करते हुए प्रभा खेतान लिखती हैं, "मगर पितृसत्तात्मक समाज की स्त्री विरोधी परंपराओं का आयाम पुरी तरह विशिष्ट है। ये पंरपराएं स्त्री को घर सौंपती हैं, बच्चों का भरण-पोषण सौंपी है। मानवता के नाम पर वृद्ध और बीमारों के लिए उससे निशुल्क सेवा लेती हैं, और बदले में उसके द्वारा की गयी सेवाओं का महिमा-मंडनकर अपने कर्तव्यों की इतिश्री कर लेती है। स्त्री भूखी है या मर रही है इसकी चिन्ता किसीको नहीं होती...."[1]

स्त्री-संघर्ष का सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य

स्त्री समाज, संस्कृति और साहित्य का महत्वपूर्म अंग है। लेकिन पुरुष प्रधान व्यवस्था ने स्त्री को सदैव भोग की वस्तु के रूप में आत्मसाथ किया है। पुरुष और स्त्री, दोनों के सम्मिलित रूप से ही

---

1. प्रभा खेतान - उपनिवेश में स्त्री - पृ. 14

मानव संस्कृति बनती है। स्त्री की अपनी एक विशिष्ट पहचान होती है, जिसे मान्यता मिलना आवश्यक है। प्रतिष्ठा की समानता और शोषण से मुक्ति ही स्त्री को स्त्रीत्व प्रदान कर सकत है। स्त्री पुरुष सत्ता का विकल्प नहीं, बल्कि एक साझा संस्कृति चाहती है। "हम सभी जानते हैं कि भारतीय समाज में ही नहीं, दुनिया के सभी समाजों - सभ्यताओं - संस्कृतियों में स्त्री का स्थान या दर्जा दूसरा यानी दोयम ही रहा है। वह सदा किसी दूसरे के तंत्र में रही है चाहे वह पिता हो, भाई हो, पति हो या पुत्र ही क्यों न हो। वह अपने लिए एक तयशुदा आचार-संहिता के दायरे में ही जीवन जीने को बाद्य रही।"[1]

मौजूदा अपसंस्कृतिमूलक उत्तर उपनिवेशवादी उपभोक्तावाद - स्त्रियों को 'कमोड़िटी' बना देने की साजिश में लिप्त है। स्त्रियों का एक खास समूह उसकी इस अपसंस्कृति की शिकार है। उपयोगिता की शक्ति के आगे प्रतिरोध की क्या ताकत? नव उदारीकृत बाज़ार व्यवस्था में 'देह' बनी स्त्री स्वयं उत्पाद में तब्दील होती है। "इस टकराहट का लाभकारी पक्ष से पर्यटन और व्यापार को बढावा मिलता है। मगर खराब पक्ष है कि इससे समाज में यौन-पर्यटन भ्रष्टाचार तथा अन्य बुराइयाँ फैलती हैं।"[2]

---

1. साक्षात्कार (पत्रिका, दिसम्बर, 2008) ज्योत्सना मिलन भारतीय सन्दर्भ में स्त्री विमर्श (लेख) - पृ. 98
2. प्रभा खेतान - बाज़ार के बीच बाज़ार के खिलाफ (2004) - पृ. 15

इस अपसंस्कृति के कालखण्ड में स्त्री में आत्मविश्वास जगाने योग्य कहानी है मृदुला गर्ग की 'खरीदार'। 'खरीदार' कहानी में लेखिका ने स्त्री को नये रूप में प्रस्तुत किया है। स्त्री की यह छवि काफी दमदार और सामर्थ्यशाली है। एक स्त्री जो आज दूसरों की खरीद की चीज़ है उसे लेखिका ने खरीदार बनाया है। खरीदार के पास खरीदने की क्षमता होनी चाहिए। स्त्री के पास खरीदने की क्षमता अर्थात् वह खरीदार कैसे बन सकती है इसका नुस्खा कहानी में है। एक समय था जब नीना खरीद की वस्तु थी। उसने दुनिया को पहचान लिया। उसने देखा कि दुनिया गुटों में बंटी हुई है, दूकानदार और खरीदार तो वह खरीदार बनने का निर्णय लेती है और खरीदने की क्षमता हासिल कर ही लेती है।

नीना एक शिक्षित, प्रबुद्ध और निर्णय की पक्की युवती है। विवाह की उम्र में माता-पिता ने बड़ी दौड़-धूप करते हुए उसके लिए दूल्हे को ढूँढने का कार्य किया था। दूल्हा दिखने में कैसा भी हो पर उसे सुन्दर दुल्हन ही चाहिए और ऊपर से माल। क्योंकि "यह तो दुनिया का कायदा है। पहले-पहल लड़की की सूरत देखी जाती है और लड़के की कमाई।" नीना के माता-पिता के पास न अधिक माल था और न ही नीना अधिक सुन्दर थी। बड़ी भाग-दौड़ करके उन्होंने 'बीस हज़ार' में सौदा पटा लिया था। लेकिन नीना ने शादी करने से इनकार कर दिया। उसने सोचा - पूरी दुनिया दो गुंटों में बंटी है -

दूकानदाकर और खरीदार। ठीक है, मैं भी खरीदार बनूँगी उसने तय किया। विक्रेता नहीं खरीदार"[1] वैसे लड़की का इस तरह निर्णय लेना खतरे से खाली नहीं है। पहली बात तो यह है कि माँ-बाप इस तरह का निर्णय नहीं लेने देते। ऐसी स्थिति में पहले परिवारवालों से संघर्ष करना पड़ता है और समाज से भी। इस तरह का निर्णय लेने के बाद अकेलापन और ऊपर से सबके ताने ही हिस्से में आते हैं। इन स्थितियों से संघर्ष करने की सामर्थ्य जो लड़की रखती है वह विवाह के बाज़ार में अपने को बेचने से बचाती है। "नहीं यह बिक्री का माल नहीं है। मैं खरीदार बनूँगी। विक्रता नहीं खरीदार।"[2] नीना में यह सामर्थ्य है और उसने निर्णय लिया कि अब वह खरीद की चीज़ नहीं खरीदने की क्षमता हासिल करके रहेगी।

नीना ने अपना पूरा ध्यान पढ़ाई मे जुटा दिया। आइ.ए.एस. की परीक्षा पास करने का फैसला करती है। वह परीक्षा पास हुई और एक छोटे से कस्बे में सहायक कमिश्नर के रूप में नियुक्त हो जाती है। बाद में ग्रहमंत्रालय में संयुक्त सचिव का स्थान पर आती है। अपने कर्म क्षेत्र में उतरने के बाद भी उसे काफी संघर्ष करना पड़ता है। 'स्त्री अफसर' होने के कारण योग्यता होने के बावजूद उसकी कार्यकुशलता पर अविश्वास किया जाता है। दूसरों की नज़रों में स्त्रियों के कर्म क्षेत्र

---

1. मृदुला गर्ग - ग्लोरियार से (क.सं) - खरीदार (कहानी) (1980) पृ. 83
2. वही - पृ. 85

सीमित हैं। लेकिन उसने सिद्ध करके दिखा दिया कि केवल स्त्री होने के कारण ही वह किसी भी प्रकार से कमज़ोर नहीं है और न ही स्त्री होने के नाते उसके लिए कोई कार्य क्षेत्र वर्जित है। अपने सारे काम करते समय वह पूर्ण स्वतंत्र, आत्मनिर्भर और संशयहीन हो उठती है। सत्ता को लगाम की तरह हाथों में थाम लेती है। तभी तो लोगों का देखने का नज़रिया बदला जाता है "लालची नज़रों से उसे कभी पुरुषों ने नहीं देखा, अब आग्रह्य दृष्टि से देखना भी बंद होने लगा है। समझने लगे हैं कि वह विवेकशील है, कर्मकुशल है, स्त्री है तो क्या, उसे काम सौंपना होता है, सौंपकर उसकी क्षमता पर विश्वास करना होता है। यही नहीं काम करते समय उसके आदेशों का पालन भी करना होता है। उसको बेवकूफ नहीं बनाया जा सकता बनाने की इच्छा नहीं होती है।"[1] अकेले चलकर इस मुकाम पर पहुँचने के लिए उसने कठिन रास्ता तय किया है। सभी मानते हैं - "आज उसके पास सबकुछ है। गाड़ी है, बंगला है... सफलता का अपना एक रूप होता है वह भी उसके पास है। उसकी चाल में आत्मनिर्भरता है, आवाज़ में रौब है और चेहरे पर प्रभावशाली व्यक्तित्व की छाप है। सबसे बड़ी बात यह कि वह जानती है कि उसके कुछ कहने पर लोगों को झुकना होगा। चाहे दफ्तर हो चाहे बैठक। 'औरतें क्या जाने यह जंजाल' कहकर बात को उड़ा नहीं सकेंगे। उसके पास सबकुछ है। और जो

---

1. मृदुला गर्ग - ग्लेशियार से (क.सं) खरीदार (कहानी) (1980) पृ. 86

नहीं है, कभी भी ले सकती है।"[1] इस तरह 'खरीदार' यह कहानी स्त्री को नये रूप में प्रस्तुत करती है। विवाह के बाज़ार में नीना ने अपने आपको बेचने के बजाय खरीदार बनना स्वीकार किया।

अपसंस्कृति की ओर आकृष्ट होनेवाले स्त्री-पात्रों का चित्रण भी लेखिकाओं ने किया है। मध्यवर्ग में ज़्यादा धन का मोह रहता है। नमिता सिंह की कहानी 'मक्का की रोटी' में मिसेज़ वन्दना गुप्ता मध्यवर्गीय स्त्री है जो ग्रामीण विकास के लिए सोशल वर्क करती है। लेकिन उसका सोशल वर्क मात्र दिखावा और ढ़ोंग है। वह विकास के नाम मिलनेवाली धनराशि को हड़पना चाहती है। अपने रूप सौन्दर्य और मधुरवाणी तथा चापलूसी का अभिनय कर वह जिले के कलक्टर, इंजीनीयर तथा विकास विभाग से जुड़े अन्य सभी कर्मचारियों को गाँव में स्थान निरीक्षण के लिए आमंत्रित करती है। इन अधिकारियों को वह मक्का की रोटी और साग के विशेष भोजन के लिए भी आग्रह करती है। भोजन के बीच में भी वन्दना गुप्ता अपना कृत्रिम व्यवहार का परिचय देती है। वह इंजीनियर से कहती है - "सर आपने देख लिया होगा गुप्ताजी ने प्रोजेक्ट जमा कर दिया है। ज़मीन तो इसी गाँव की है। थोड़ी प्रोब्लम है ज़मीन के बारे में। वैसे प्रधान और सरपंच दोनों तैयार है सर। पंचायत की ज़मीन है लेकिन ऑफटर ऑल, फैक्टरी लगेगी

---

1. मृदुला गर्ग - ग्लेशियार से (क.सं) खरीदार (कहानी) (1980) पृ. 90

तो सबसे ज़्यादा इस गाँव के लोगों का ही भला होगा। आप चाहेंगे तो ज़मीन भी मिल जाएगी सर," वन्दनाजी ने फइर सनकती हुई स्माइल दी। "श्योर ! श्योर आप इतनी समाज सेवा कर रही हैं फिर तो हमें आपकी सेवा करनी ही होगी। हो-हो-हो...." उनका अट्टहास मानो मुँह तक भरे हुए घडे से निकल रहा हो।"[1] लेखिका ने मिसेज वन्दना की चरित्र धन लोलुप और स्वार्थी रूप को प्रस्तुत किया है। मिसेज़ वन्दना उन लोगों में से हैं जो ग्रामीणों के नाम पर आबंठित धनराशि से अपने लिए हडपना चाहती हैं। भ्रष्टाचार और आर्थिक घोटाला पर कटु व्यंग्य करनेवाली कहानी 'मक्का की रोटी' में लेखिका ने पूँजीवादी व्यवस्था के असंतुलित विकास और आर्थिक भ्रष्टाचार की ओर संकेत किया है। मध्यवर्ग की शिक्षित महिलाएं भी आसानी से अधिकाधिक धन कमाने की दौड़ में लगी हैं। सामाजिक विकास के स्थान पर वैयक्तिक विकास और अपने भौतिक जीवन को समृद्ध करना इनका मूल चरित्र है। यह हमारे समाज में निहित अपसंस्कृति का ही परिणाम है। इस जाल में पड़कर एक ओर स्त्री अपना अस्तित्व खो देती है और स्त्री के स्वत्व को आर्थिक कर देती है। इसे सांस्कृतिक विघटन के रूप में ही देखना चाहिए।

जहाँ कथा लेखिका ने मध्यवर्ग की उच्च शिक्षा प्राप्त और सामाजिक हैसियत रखने वाली महिलाओं की अतिशय अर्थाकांक्षा

---

1. नमिता सिंह - जंगल गाथा (क.सं) - मक्का की रोटी - पृ. 63-64

और धनलोलुप प्रवृत्ति के चित्र खींचे हैं वहीं उन्होंने समाज के निम्न मध्य वर्ग की महिलाओं की आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त करने के संघर्ष को भी अपनी कहानियों में चित्रित किया है। 'गलत नम्बर का जूता' में लेखिका ने इस का उद्‌घाटन किया है कि समाज में सुजाता जैसी भी स्त्री है जो धन तो कमाती है लेकिन अवैध और अनतिक ढ़ंग से नहीं। सुजाता का पति सुधीश अतिशय महात्वाकांक्षी है वह जल्दी से मालादार बनने के लिए जीवन में 'शार्टकट' के रास्ते चलना चाहता है। समाज की आर्थिक विसंगतियों ने मनुष्य को इतना अर्थजीवी सोच का बना दिया है कि वह अपना अच्छा-बुरा, समाज, मानवता किसी को भी नहीं मानता है।

स्त्री की परिकल्पना समकालीन कहानी में संघर्ष के यथार्थ के संदर्भ में हुई है। यह समकालीन यथार्थ को प्रस्तुत करने के लिए भी है और उसको बदलने के लिए भी है। अन्य कई अन्तर्विरोधों की तरह स्त्री का यथार्थ, परिवर्तनकामी दिशाओं एवं परिवर्तनेच्छाओं के बावजूद, संघर्ष करने के लिए बाध्य है। महिला-लेखन इस संदर्भ में अधिक संवेदनशील है कि वह स्त्री के सही बिम्ब की खोज कर रहा है और उसकी यह खोज अब भी ज़ारी है।

अध्याय : पाँच

समकालीन महिला कहानीकारों की कहानियों की सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रासंगिकता

स्त्री का केन्द्र में आगमन

हिन्दी में ही नहीं बल्कि अन्य सभी भाषाओं में महिला लेखन चर्चा के केन्द्र में है। भारतीय भाषाओं में सन अस्सी के बाद महिला-लेखन प्रमुख हो उठा है। हिन्दी में कम से कम पचीस-तीस लेखिकाएँ काफी सक्रिय हैं।[1] मात्र कहानी के क्षेत्र में ही नहीं बल्की कविता के क्षेत्र में ही उनकी सक्रियता दर्ज है।[2] सृजनात्मक विधा के अलावा स्त्री अध्ययन की पुस्तकों की भरमार ही दिखाई देती हैं। उसकी सूची दी गई है।[3]

पाद टिप्पणियाँ हैं -

1. *मन्नु भण्डारी, उषा प्रियंवदा, कृष्णा सोबती, ममता कालिया, शशिप्रभा शास्त्री, मेहरुन्निसा परवेज़, चित्रा मुद्गल, मालती परुलकर, मीनाक्षी पुरी, कृष्णा अग्निहोत्री, क्रान्ति त्रिवेदी, कांता भारती, कुसुम अंसल, मंजुल भगत, निरुपमा सेवती, दीप्ति खंड़ेलवाल, सूर्यबाला, सुनीता जैन, मृदुला गर्ग, मालती जोशी, शुभा वर्मा, दिनेश नन्दिनी ड़ालमिया, बिन्दु सिन्हा, मृणाल पाण्ड़ेय, प्रतिमा वर्मा, बाला दुबे, मणिका मोहिनी, मिथिलेश कुमारी, राजीसेठ, नासिरा शर्मा, प्रभा खेतान, मैत्रेयी पुष्पा, सुषमा बेदी, अलका सरावगी आदि।*

2. *कात्यायनी, अनामिका, इन्दु जैन, रमणिका गुप्ता, निर्मला पुतुल, अर्चना वर्मा, अनीता वर्मा, वीणा सिन्हा, प्रभा खेतान, निर्मला गर्ग, सविता सिंह, नीलेश रघुवंशी, रजनी तिलक, सुनिता जैन आदि।*

3. *स्त्रीत्व का मानचित्र (अनामिका)*
   दुर्ग द्वार पर दस्तक (कात्यायनी)

परिधि पर स्त्री (मृणाल पाण्डे)
मात्र देह नहीं है औरत (मृदुला सिन्हा)
स्त्री का आकाश (कमला संघवी)
आम औरत : जिंदा सवाल (सुधा अरोड़ा)
स्त्री आकांक्षा के मानचित्र (गीताश्री)
इस्पात में ढलती स्त्री (शशिकला राय)
आधी दुनिया का सच (कुमुद शर्मा)
मोर्चे पर स्त्री (अंजु दुआ जैमिनी)
विश्व की प्रसिद्ध महिलाएँ, नारी शोषण - आईने और आयाम, नारी विद्रोह के भारतीय मंच, औरत : कल, आज और कल (आशारानी व्होरा)
जीना है तो लड़ना होगा (बृंदा कारात)
मात्र देह नहीं है औरत (मृदुला सिन्हा)
मन मांझने की जरूरत (अनामिका)
औरत अपने लिए (लता शर्म)
खुली खिड़कियाँ (मैत्रेयी पुष्पा)
औरत के लिए औरत (नासिरा शर्मा)
हम सभ्य औरतें (मनीषा)
बिटिया है विशेष (मृदुला सिन्हा)
नारी तुम अनन्या हो (जयश्री गोस्वामी महंत)
स्त्री का समय (क्षमा शर्मा)
नष्ट लड़की : नष्य गद्य (तसलीमा नसरीन)
बाधाओं के बावजूद नई औरत, उठो अन्नपूर्णा साथ चलें (उषा महाजन)
बाज़ार के बीच बाज़ार के खिलाफ, उपनिवेस में स्त्री (प्रभा खेतान)
दुर्ग द्वार पर दस्तक (कात्यायनी)
नारी प्रश्न (सरला महेश्वरी)
बंदकलियों के विरुद्ध (क्षमा शर्मा, मृणाल पाण्डेय)
स्त्री उपेक्षिता (अनु. प्रभा खेतान)
स्त्री लेखन और समय के सरोकार (हेमलता महेश्वर)

स्त्री लेखन को विशेष रूप से समाजशास्त्रीय सन्दर्भ में देखने के कारण ही इसका महत्व बढ़ गया है। स्त्री द्वारा रचित रचना-संसार और पुरुष द्वारा रचित रचना संसार में पर्याप्त अन्तर है। पुरुष द्वारा रचित रचना-संसार में पुरुष की मानसिकता किसी भी दबाव के अधीन नहीं है। स्त्री द्वारा रचित रचना-संसार में कहीं-न-कहीं स्त्री का संसार दबता हुआ महसूस होता है। यह बात स्त्री की कल्पना नही बल्कि यह स्त्री का यथार्थ है। इस यथार्थ की पहचान के लिए प्रायः हमें अपने इतिहास, परंपरा, संस्कृति आदि की ओर देखना पड़ता है। स्त्री लेखन के प्रति इस नये दृष्टिकोण के कारण स्त्री जगत में से कई मौलिक परिदृश्य प्राप्त हुए हैं। अतः स्त्री-लेखन मात्र एक विषय नहीं बल्कि हमारे इतिहास का एक प्रमुख अंग है। वह हमारी संस्कृति का पुनर्पाठ प्रस्तुत करता है। अतः यह कहा जा सकता है कि महिला-लेखन एकाएक महत्वपूर्ण नहीं हो पाया है बल्कि महिला लेखन का नये सिरे से देखने, पुनर्पाठ तैयार करने की नयी दृष्टि के कारण महिला लेखन की प्रासंगिकता बढ़ गई है और वह चर्चा के केन्द्र में है। जब हम कहानी को विधा विशेष के रूप में विश्लेषित करते हैं हिन्दी कहानी के महिला लेखन के प्रारंभिक दौर से लेकर अब तक की उसकी जो रचनाशीलता है वह कम सन्तोषजनक नहीं है। निश्चय ही समकालीन महिला कहानी लेखन अपनी बेहतर स्थिति में है।

स्त्री केंद्रित कहानियों पर आलोचकीय प्रतिक्रियाएँ

महिला कहानीकारों पर हुई आलोचकीय प्रतिक्रियाओं पर विचार करना आवश्यक है। अधिकतर आलोचकों में महिला लेखन के पक्ष में अपने विचार व्यक्ति किये हैं। कुछ महत्वपूर्ण प्रतिक्रियाओं को हम देख सकते हैं -

"नारीवाद की मूल प्रकृति और स्त्री-मुक्ति की उनकी आकांक्षा को उनके अपने साहित्य को छोडकर नहीं समझा जा सकता। इसमें उन कारणों की अनदेखी भी नहीं की जा सकती कि आखिर महिला लेखकों का एक बड़ा और गंभीर वर्ग क्यों अपने को नारीवाद से अलग और बाहर रखे जाने पर जोर देता है। साहित्य में प्रायोजित मूल्यांकन और उपभोग की राजनीति के इस दौर में यह चिन्ता भी नारीवाद के ही दायरे में आती है कि आखिर क्यों मन्नू भण्डारी की 'एक कहानी यह भी' विधिवत रिलीज़ होने के पूर्व ही हंस में प्रायोजित मूल्यांकन का एक उदाहरण बनती है और स्त्रियाँ ही स्त्री के लंबे और क्रूर उत्पीड़न की चिन्ता किए बिना संपादक के पक्ष में खड़ी होती हैं।"[1]

"महिला लेखन से महिलाओं को पूर्ण रूप से 'फीडबैक' मिलता है। नारी लेखन नारी मन की ही अभिव्यक्ती है। नारी ने नारी

---

1. वाङ्मय (पत्रिका) जुलाई-दिसंबर 2007 मधुरेश - नारीवाद की विचार-भूमि (लेख) पृ. 23

की गूँगी पीड़ा को लिखा, उजागर किया, उसके मौन को शब्द हुए। पुरुष लेखक के लिए नारी रूमानी ख्याल, यादों की मूरत थी। बेशक नारी लेखन ने पुरुष लेखकों के हाथ से उसकी सुंदर, बेजबान गुड़िया छीन ली है और रोती, चीखती, बिलखती, कलपती नारी को सामने ला खड़ा कया है।"[1]

"दुर्भाग्यपूर्ण यह भी है कि हमारे यहाँ महिला लेखिकाओं ने स्वयं भी बड़े जोखिम नहीं उठाये, न बीहड़ यात्रायें की, न अनजाने अनुभवों के समक्ष प्रस्तुत हुई न अपनी विशाल साहित्यिक संपदा का ही ठीक से अध्ययन किया। क्या कारण है कि आज़ादी के बाद एक भी पुरुष या महिला महाश्वेता देवी जैसी नहीं हुई जो आदिवासियों की कथा लिख सके? इरावती कर्वे जैसी विदुषी नहीं हुई जो एक नया ऐतिहासिक, पौराणिक चिन्तन दे सके?"[2]

"मैं पूर्ण दायित्व से यह कहना चाहूँगा कि इस अनुभव वृत्त में नयी कहानी के दौर से लेकर अब तक जितने सशक्त रूप में कृष्णा सोबती, उषा प्रियंवदा, मन्नू भण्डारी, मृदुला गर्ग, चित्रा मुद्गल, मृणाल पाण्डे, मंजुल भगत, सुधा अरोड़ा, राजी सेठ, चन्द्रकान्ता, सूर्यबाला और बाद की पीढ़ी में ऋता शुक्ल, मैत्रेयी पुष्पा, जया जादवानी, क्षमा शर्मा, प्रभा खेतान, सरयू शर्मा, कमल कुमार, सुबम बेदी, तवलीन

---

1. मेहरुन्निसा परवेज़ - साहित्य वार्षिकी - पृ. 27
2. गगन गिल - इण्डिया टुडे - साहित्य वार्षिकी 1996 - पृ. 20

आदि ने लिखा है, इतने सशक्त रूप में पुरुष कथाकार नहीं लिख सकते थे। संबन्धों के सत्य पर लिखी गयी इनकी कहानियाँ न केवल अपने समय का दस्तावेज अपितु हमारे भाषा के साहित्य का गौरव भी बनती है।"[1]

"ऐसे में महिला लेखन के लिए दोहरी चुनौतियाँ है। पहले तो वे हैं जो सभी (यानी पुरुषों व महिला रचनाकारों) के लिए लागू हैं और दूसरी वे जो नारी मन की बारीक समझ औऱ सूक्ष्म संवेदना के कारण महिला रचनाकार ही अधिक गहराई और मार्मिकता से चित्रित कर सकती है। ज़ाहिर है कि ऐसे में महिला रचनाकारों से नये कथ्य एवं शिल्प की अपेक्षा की जाती है।"[2]

"जिस रिद्दत से महिला रचनाकारों ने स्त्री के पारिवारिक सामाजिक और दैहिक शोषण को संवेदी स्वर और आक्रोशी तेवर दिए है, दोयम दर्जे की स्थिति को नकारकर शोषण धर्मिता की अनकही पीड़ा का महाआख्यान है, वही उसकी संघर्ष चेतना और स्त्री विरोधी व्यवस्था से रू-ब-रू होकर, अपनी लड़ाई आप लड़ने की सामर्थ्य का सशक्त दस्तावेज भी है।"[3]

---

1. मधुमती (पत्रिका) जून, 1998 - डॉ. पुष्पपाल सिंह (लेख) महिला लेखन : कुछ विमर्श - पृ. 22)
2. मधुमति (पत्रिका) जनवरी 2007, डॉ. सुमन बिस्सा (लेख) महिला लेखन की चुनौतियाँ, पृ. 111
3. आजकल (पत्रिका) मार्च 2008 चन्द्रकान्ता (लेख) स्त्री विमर्श की अवधारणा और हिन्दी साहित्य - पृ. 18

"वैसे तो लेखन या रचना को स्त्री और पुरुष के खांचे में बांट कर देखना न्यायोचित नहीं है। रचना तो रचना होती है चाहे वह पुरुष की कलम से फूटी हो चाहे स्त्री की उंगलियों ने उसे शब्दों का ज़ामा पहनाया हो। इस विषय के आधार पर तो यह विषय ही खारिज जाना चाहिए, परन्तु यह प्रश्न इतना सीधा और सरल नहीं है, न सपाट मानसिक धरातल की ही उपज है। अनेक समीक्षक, स्वनाम धन्य लेखक महिला लेखन पर फतीनुमा वक्तव्य देकर इस प्रश्न को चिन्तन के अलाव पर सुलगने के लिए विवश करते रहे हैं। विचारगोष्ठियों, साहित्यिक चर्चाओं आदि में महिला लखन पर छींटाकशी होती रहती है। बारीक फांटेदार शब्दावली द्वारा उसकी सूक्ष्म प्रताड़ना व अवहेलना की जाती है।"[1]

महिला लेखन के विपक्ष में भी प्रतिक्रियाएँ व्यक्त की गई हैं। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं -

"महिला लेखन में संपूर्ण समाज की अभिव्यक्ति नहीं होती दरअसल ऐसा लेखन छोटे समुदायों के हितों में रखकर किया जाता है। ऐसा साहित्य अर्द्ध-साहित्य को प्रतिबिंबित करता है। यह लेखन तात्कालिक प्रतिक्रिया का परिणाम है। जबकि साहित्य का मूल स्वरूप

---

1. सं. रमेश गौतम, डॉ. पूरनचन्द टण्डन - साहित्य का नया विवेक - डॉ. आशा जोशी - पुरुष दृष्टि से महिला लेखन : सामयिक सन्दर्भ (लेख) (2002) - पृ. 149

मानव मुक्ति प्रदान करने वाला है। खण्ड-खण्ड में मुक्ति साहित्य का लक्ष्य नहीं है।"[1]

मन्नू भण्डारी और प्रमोद त्रिवेदी के बीच हुई साक्षात्कार के दौरान महिला लेखन पर त्रिवेदी की टिप्पणी है। "हिन्दी महिला लेखिकाओं की परिधि सीमित है। उनके लेखन आज के परिवार, परिवार के विघटन, परिवार और समाज में उनकी बेचारगी तक ही सीमित है। एक तरह का आत्ममोह आज भी कथा लेखिकाओं में है। ...कहने की छूट दें तो कहूँ... औरताना है।"[2]

इस उपेक्षा का कारण ढूँढने की कोशिश करें तो सामाजिक और समाजशास्त्रीय सन्दर्भों से स्पष्ट हो जाता है कि यह पुरुषप्रधान समाज से उपजी मानसिकता का परिणाम है। कभी हमारे समाज में मातृप्रधान सत्ता थी और कुछ प्रदेशों में आज भी है। किन्तु, जैसे-जैसे परिवार की धुरी स्त्री से पुरुष के हाथ में गई वैसे-वैसे स्त्री को दूसरे दर्जे पर रख कर देखने की प्रवृत्ति बढ़ने लगी। उस नज़रिए से रचनात्मक क्षेत्र कैसे अछूत रह सकते है?

---

1. नामवर सिंह - अमर उजाला (पत्रिका) 12 दिसंबर 1999
2. साक्षात्कार (पत्रिका) अक्तूबर अंक सन् 1992 - पृ. 11

स्त्री-स्वत्व का अन्वेषण

समकालीन दौर में स्त्री समाज के सभी क्षेत्रों में ताकतवार हो रही है। आज स्त्री अपने व्यक्तित्व को विकसित और गतिशील बनाने के लिए, अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के लिए पूरी तरह से पुरुष पर ही निर्भर नहीं है क्योंकि वह अनुभव करती है कि पुरुष मानसिकता सामन्ती संस्कारों से ग्रस्त है। वह स्त्री के साथ न्याय करनेवाला नहीं है। स्त्री को स्वतंत्र व्यक्तित्व प्रदान करनेवाला नहीं है। लेखन एक बड़ा अनुशासन है। महिला लेखन को छोटे खाने में कैद नहीं किया जा सकता। लेखिकाओं ने रचना के माध्यम से जागरण की ऊर्जा को आत्मसात किया है और सफलतापूर्वक रचनाशील हैं।

समकालीन महिला कहानी लेखन में लेखिकाओं की अत्यंत सशक्त उपस्थित है। लेखिकाओं की एक पूरी पीढ़ी इन दशकों में बहुत महत्वपूर्ण होकर उभरी है। यह स्थिति शायद पहले के दौर में नहीं थी। लेखिकाएँ लिख रही थीं, लेकिन इधर जिस तरह उन्होंने 'स्त्री लेखन' की पूर्व धारणाओं को तोड़ा है, वह इसी दौर की खासियत है। महिला लेखन अब सिर्फ घर या परिवार विषय पर भावुक लेखन नहीं रह गया है, वह तमाम लेखकों के साथ बराबरी पर खड़ा है, कई बार उनसे आगे भी।

आधुनिक युग जैसे दलितों और पिछड़ी जातियों के लिए मुक्ति का, सामाजिक परिवर्तन का युग साबित हुआ, उसी प्रकार, स्त्री के

लिए, स्त्री उत्थान के लिए, स्त्री लेखन के लिए भी क्रान्तीकारी साबित हुआ है। इस युग में स्त्री स्वयं जीवन के हर क्षेत्र में आई, उसका आना ज़रूरी था। लेकिन स्त्री जैसे-जैसे अपने बलबूते पर जीवन के हर क्षेत्र में आगे आने लगी तो उसका पुरुषाधिष्ठित मूल्यों से टकराव भी होने लगा। आज का बदलता परिवेश भी लेखन के लिए कम चुनौतीपरक नहीं है।

जहाँ स्त्री रचनाकार अपनी प्रतिभा के बल पर लेखन के क्षेत्र में स्वतंत्र चिन्तन के समानांतर छूट लेती है और समाज में व्याप्त ज्वलंत और नग्न समस्याओं को अपनी कलम से प्रकट करती हैं तो आलोचकों को वे अतिरिक्त बोल्ड़ दिखई देने लगती है। उन पर गंभीर चिन्तन की आवश्यकता नहीं समझी जाती। असल में आज की लेखिका पूर्ण आत्मविश्वास, बेबाकी और गहरी पैठ के साथ जीवन के प्रत्येक विषय को कलमबद्ध कर समाज को चिन्तन के लिए विवश कर रही है। स्त्रीर स्वत्व का अन्वेषण मात्र साहित्य का विषय नहीं है। वह महिला- कार्य प्रवर्तन (फेमिनिस्ट एक्टिविसम्) का हिस्सा है। जागरण यहाँ आवेग का प्रतिलन नहीं रहा। जागरण वास्तव में चिंतन शीलता का प्रतिफलन है। स्त्री लेखन में हम इसी स्वत्व का सामना करते हैं। स्त्री लेखन में स्त्री की समस्याओं का चित्रण तो होता है। परंतु स्त्री-लेखन से आगे भी कदम बढ़ाना पड़ता है। जिससे स्त्री के पारदर्शी

स्वत्व स्पष्ट हो जाए। यही वास्तविक स्वत्वबोध को परिभाषित करता है। यही चिंतन के जनतंत्र की अभिव्यक्ति है।

जीवन के कुछ चूनींदे क्षणों की सृजनात्मक अभिव्यक्ति ही कहानी में होती है। लेकिन उसकी अंतरंग संरचना में ठोस जीवन-दृष्टि, जो कि गहन सांस्कृतिक अंतर्दृष्टि से परिचालित होती है। शब्दों की रचनात्मक व्यवस्था के भीतर से झांकती है। महिला कहानीकारों की कहानियों में यह ठोस दृष्टि स्त्री-बिंब को संबंधित है और वही उसे प्रासंगिकता प्रधान करती है।

स्त्री विकल्प की वास्तविकताएँ

स्वयं महिलाओं में आ रही जागरूकता तथा बदलते पुरुष नज़रिये ने जहाँ इसकी सहज स्वाभाविक मानवीय चेतना को उद्‌बुद्ध किया है, वहीं वैश्विक बाज़ारवाद ने स्त्री देह का व्यवसायीकरण भी किया है। पश्चिमी नारीवाद के आगमन तथा औद्योगीकरण-शहरीकरण के द्वारा इसे नये आयाम प्राप्त हुए हैं। समकालीन भारतीय समाज में जहाँ परंपरागत नैतिकता, आस्था एवं मूल्यों का विघटन हो रहा है, वहीं नवीन नैतिकता और मूल्यों का मज़बूत आधार तैयार नहीं हो पा रहा हैं। भारतीय स्त्री भी इसी स्थिति से गुज़र रही है। इसके समक्ष जहाँ एक ओर परंपरागत भारतीय संस्कारों की अपनी जगह है, वहीं पश्चिमी आधुनिकता का एहसास भी है। फलतः पारिवारिक, सामाजिक,

आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक मूल्यों में तेज़ी से परिवर्तन हो रहे हैं, जिसने भारतीय स्त्री की दिशा और दृष्टि को प्रभावित भी किया है।

कुसुम अंसल की कहानी 'स्पीड़ ब्रेकर' में भावशून्यता से बेचैन स्त्री दाम्पत्य के प्रति आक्रोश व्यक्त करती है - "जी चाह रहा था - विद्रोह कर डालूं, सबसे बदला लूँ... माँ बाप से, जिन्होंने जाने क्या सोचा, जहाँ जी चाहा ब्याह दिया, विद्रोह करूँ अपने आप से जो बिना प्रतिवाद किए सिर झुकाए चलती रही, फिर अपने पति विवेक से, जिसने घर के कीमती फर्नीचर या फ्रिज की तरह मुझे भी घर का एक विषय समझकर प्रयोग किया।"[1] इस प्रकार महिला कहानीकारों ने दाम्पत्य जीवन के उन अनछुए पहलुओं की ओर ध्यान आकृष्ट कराने की पहल की है जो आम तौर पर स्त्री के मन, भावना ओर व्यक्तित्व की कुंठा पर आधारित होता है। ऊपर से सबकुछ ठीक दिखाकर भी अन्दर कितनी भावहीनता - का ठण्डापन महसूस होता है, इसका यथार्थ चित्रण महिला कथाकारों की लेखनी से ही पहली बार प्रकट हुआ है, जिससे निस्सन्देह इस लेखन की सार्थकता बढ जाती है।

हर एक स्त्री को अपनी पूरी जिन्दगी मजबूरी में बिताना पड़ता है। लेकिन लेखिकाओं की दृष्टि 'अपनी खुद की ज़िन्दगी' जीने देने

---

1. सं. मीना अग्रवाल - महिला कथाकारों की उन्नीस श्रेष्ठ कहानियाँ (क.सं) - राजी सेठ - स्पीड ब्रेकर (कहानी) प्र.सं. 1980, पृ. 42-45

तक पहुँची है। वस्तुतः उनकी अधिकतर कहानियों में स्वतंत्र व्यक्तित्व की चाह व्यक्त हुई है जहाँ वह स्वयं की इच्छा से परिचालित हो, न कि थोपे गये पारंपरिक मूल्यों के आधार पर। पूर्णतः यह बात कहानी में न होते हुए भी अधिकतर कहानियों में कहीं न कहीं यह स्वतंत्र व्यक्तित्व की चाह को समेटी गई है। जैसे कि मुस्लिम समाज की स्त्रियों की दुरवस्था की ओर इशारा करनेवाली कहानी है मेहरुन्निसा परवेज़ की 'ढ़हता कुतुबमीनार।' कहानी में बेबस स्त्री अपनी स्थिति-परिस्थिति के प्रति सजगता प्रकट करती है - "जहाँ पुरुष का हर रूप आदेश माना गया। वह अखबार के छोटे से दफ्तर में अपनी एक दोस्त के सहारे काम तलाशने में सफल हो गई थी, उसे खड़े होने के लिए बस थोड़ी सी जगह ही तो चाहिए थी। जहाँ लड़ाई में वह सब कुछ हार गई थी, वहाँ यह भी एहसास क्या कम था कि वह एक बेजान निर्जीव नहीं है, उसके भी जजबात है, उसकी भी भावनाएँ है।"[1] नासिरा शर्मा की कहानी 'वही पुराना झूठ' में पुरुषसत्तात्मक मूल्यों - मान्यताओं से पिसती स्त्री की दुरवस्था तथा उसमें उसकी अनुकूलन की स्थिति खींची गयी है। यह कहानी मुस्लिम समाज में स्त्री की निकाह की समस्या को लेकर लिखी गयी है। निकाह के नाम पर स्त्री को लूले-लंगडे से लेकर अन्धे के गले में बाँध दिया जाता है और यह संतोष व्यक्त कर लिया जाता है कि वह विवाहित होकर एक बहुत बड़ी

---

1. मेहरुन्निसा परवेज़ - ढ़हता कुतुबमीनार)क.सं), प्र.सं. 1993 - पृ. 18

उपलब्धि हासिल कर चुकी है। ऐसा अक्सर होता है, तभी तो लेखिका ने प्रश्न उठाया है कि आखिर हर लड़की की कहानी एक ही जैसी क्यों होती है? क्या शादी की वैधानिक सामाजिक मान्यता के नाम पर सब कुछ सहा जा सकता है? जहाँ स्त्री की बेचैनी उसे अपनी ज़िन्दगी का एहसास नहीं खोने देती - "यह तो हम औरतों की ज़िन्दगी का साथ है। इसलिए मज़बूरी को अपने पैर की जूती समझे, गले का सतलडा नहीं।"[1] स्त्री में व्यक्तित्व की पहचान की तमन्ना समकालीन लेखन की उपज है। वह अपना स्वनिर्माण करना चाहती है जहाँ उसका अपना व्यक्तित्व हो अपना घर हो, जिसे वह किसी बन्धन के रूप में स्वीकारने की बजाय सहर्ष निभाये। समकालीन लेखिकाओं ने व्यक्ति स्वातंत्र्य की इस आकांक्षा को बड़ी निर्भीकता से व्यक्त किया है। सिम्मी हर्षिता की कहानी 'बनजारन हवा' की नायिका बनजारन हवा सदृश मुक्त है। वह विवाह को बन्धन मानकर इसे अस्वीकार करती है - "सुना है कि जोड़े स्वर्ग में तय होते है, पर जोड़े नरक में जीते हैं, उनके रिश्ते कहाँ तय होते हैं?"[2] इस प्रकार की मुक्ति की चाह समकालीन लेखिकाओं - शशिप्रभा शास्त्री, सूर्यबाला मृदुला गर्ग, चित्रा मुद्गल की कहानियों में प्रखर ढंग से व्यक्त हुई है और जहाँ ऐसी मुक्ति की आकांक्षा नहीं प्रकट हुई है, वहाँ दासता की अन्तर्वेदना गुंजित हुई है।

---

1. हंस (पत्रिका) जनवरी-फरवरी 2000, नासिरा शर्मा - वही पुराना झूठ (कहानी) - पृ. 58
2. सिम्मी हर्षिता - 33 कहानियाँ (कं.सं) - बनजारन हवा - पृ. 318

समकालीन लेखिकाओं ने अपने-अपने दृष्टिकोण से दहेज जैसी सामाजिक अनैतिकता पर प्रहार करने की कोशिश की है। उसके कारणों को खोजा है जिन्होंने स्त्री को सर्वाधिक संत्रस्त और हीन जीवन जीने के लिए विवश किया है। कथाकार नमिता सिंह ने समूची समाज में व्याप्त दहेज प्रथा को सामाजिक एवं आर्थिक परिप्रेक्ष्य में गहन अध्ययन किया है। उनके अनुसार दहेज स्त्री पीड़न का सबसे बड़ा अस्त्र है। यह मानवता पर कलंक है। और इस समस्या का समाधान केवल स्त्री की आर्थिक सुरक्षा और हैसियत के बल पर ही संभव है। इसलिए वह स्त्री को सामाजिक एवं आर्थिक संघर्षों में भागीदारी बनने के लिए ज़ोर देती है। लेखिका ने 'एक बेताल कथा और' कहानी में मध्यवर्गीय स्त्री कल्पना की ज़िन्दगी को प्रस्तुत किया है। दहेज के अभाव में विवाह नहीं हो रहा है। लेकिन सामाजिक मान्यता है कि माँ-बाप को लड़की के हाथ पीले करना ज़रूरी है। कल्पना सुंदर है, कला पारखी है, सारे गुण उसमें विद्यमान हैं। कल्पना के माध्यम से प्रस्तुत कहानी में लेखिका ने दहेज को सौदा बताया है। विशुद्ध व्यापार जिसमें रिश्ते नहीं अर्थोपार्जन होता है। दहेज-लोभी के परिवार के विषम वृत्त में फँसकर कल्पना का जीवन नरक बन जाता है। लेखिका के अनुसार - "अब न वह एक औरत थी, न किसी की बीबी... न बहु.... और न किसी की बेटी। सिर्फ एक गेंद-गोल-गोल जो सब तरफ से एक जैसी होती है, यानी सब गेंदें एक

जैसी होती है। वह गेंद जो दो पालों के बीच खेली जा रही थी। दोनों ओर के लोगों की मजबूरी थी। मायके वालों ने सोचा था कि एक बार शादी हो जाये तो फिर सब ठीक हो जाएगा। उसके पास बहुत बड़ी रकम नहीं थी। ससुराल वालों के पास एक अदद नौकरीपेशा लड़का था इसीलिए उनका पूरा हक था कि वे धनवान हो जायें।"[1] लेखिका बेताल के माध्यम से समाज से प्रश्न करती है कि कल्पना की मृत्यु का ज़िम्मेदार कौन है? ममता कालिया की कहानी 'फर्क नहीं' में इस ओर इंगित किया गया है कि लड़कियाँ इसीलिए अध्ययन में अपना समय काटती है क्योंकि उनके विवाह हेतु पर्याप्त दहेज उपलब्ध नहीं हो पाता। मेहरुन्निसा परवेज़ की कहानी 'विद्रोह' की नीना दहेज को अपने जीवन की नियति मानते हुए कहती है - 'भगवान या तो सबको गरीब बनाये या अमीर, पर ये बीच वाले तो वे मौत मरते हैं, न खाते बनाता है, न उगलते।"[2] वस्तुतः दहेज जैसी सामाजिक रूढ़ि से केवल स्त्री को तभी मुक्ति मिलेगी जब वह आर्थिक रूप से संपन्न हो और मानसिक स्तर पर वह बोल्ड ही। संकल्प बद्ध होकर वैवाहिक रूढ़ियों को तोड़ने का निर्णय लेना है और ऐसे विवाह का समर्थन करें, जिसमें दहेज न दिया और लिया जाता हो। लेखिकाओं ने स्त्री जीवन से जुडज़ी उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है सभी छोटी-सी समस्याओं को

---

1. नमिता सिंह - नीलगाय की आँखें (कं.सं) एक बेमाल की कथा और (कहानी) - पृ. 57
2. मेहरुन्निसा परवेज़ - आदम और हव्वा (कं.सं) विद्रोह (कहानी) प्र.सं. 1972, पृ. 128

लेकर पाठकों के सम्मुख लाने का प्रयास किया है। समस्याओं का हल ढूँढने की कोशिश भी कहानी के अन्तर्गत है। स्त्री जीवन में सुधार के लिए जित-जिन विकल्पों की प्रस्तुति हुई है वह अपनी सामाजिक यथार्थ से जुड़े भी हैं।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि समकालीन महिला कहानीकारों ने स्त्री को स्त्री की दृष्टि से देखने का कार्य किया गया है। स्त्रीत्व स्त्री के लिए सबसे मूल्यवान सत्य है, जबकि पुरुष के लिए कल्पना। लेखिकाओं ने स्त्री के बृहत्तर और व्यापक जुड़ाव को प्रस्तुत किया है। स्त्री के शोषण-उत्पीड़न, पीड़ा-व्यथा, जागरण-संघर्ष को व्यक्त करने के पक्ष में कोई भी पीछे नहीं रह गयी है। सदियों से पलती रही तथा दिनों दिन पुरुषसत्तात्मकता की बढ़ती जकड़ के प्रति नकार का भाव व्यक्त किया गया है। आर्थिक आत्मनिर्भरता की चाह जहां पुरुषसत्तावाले एकाधिकार को चुनौती देती हुई प्रकट हुई है, वहीं यौन शुचिता को स्त्री-पुरुष दोनों के लिए समान मानदण्ड के आधार पर स्थिर करने का संकल्प व्यक्त हुआ है। जिन लेखिकाओं ने स्त्री को भोग्य वस्तु मानने वाली दृष्टि का विरोध किया है, उनका प्रयास सराहनीय है। कुछ लेखिकाओं ने मुक्त सेक्स की माँग की है। लेकिन यह विचार हमारे सामाजिक माहौल में क्या सकारात्मक परिवर्तन लायेगा, इस पर सोचना है। क्योंकि भारतीय संस्कृति पति-पत्नी संबन्ध में भी कुछ

मर्यादाओं की माँग करती है। लेखिकाओं की अपनी-अपनी दृष्टि की भिन्नता के बावजूद स्त्री मुद्दों के प्रति प्रतिबद्धता सबमें विद्यमान है।

लेखिकाओं ने आज की स्त्री के जीवन के विभिन्न पहलुओं पर अपने-अपने ढ़ंग से बड़ी रचनात्मक कुशलता के साथ प्रकाश ड़ाला है। स्त्री जीवन के प्रत्येक पहलू का स्पर्श करके पाठक को उसकी स्थिति से अवगत कराया गया है। लेखिकाओं की कहानियों के केन्द्र में स्त्री रही है और उसके जीवन के यथार्थ को अपनी लेखनी द्वारा प्रस्तुत करने में वे सफल रही है। केन्द्र में स्त्री को रखना और उसके इर्द-गिर्द कहानी-रचना मुख्य बात नहीं है। कहानी को केन्द्र में रखकर संस्कृति पर विचार करने की पहल इन कहानियों में शुरू हुई है। इसे भावुक दृष्टि से नहीं यथार्थ की कर्कशता के साथ आँका गया है। महादेवी वर्मा के शब्दों में - "किसी भी विषय को सदा भावुकता के दृष्टिकोण से देखना उचित नहीं होता। इन स्त्रियों की स्थिति को भी हम केवल इसी दृष्टिकोण से देखकर न समझ सकेंगे। उनकी स्थिति को यथार्थ रूप में देखने के लिए हमें उसे कुछ व्यावहारिक रूप में भी देखना होगा। अनेक व्यक्तियों का मत है कि चाहे जितना प्रयत्न किया जाय, स्त्री समुदाय में कुछ स्त्रियाँ अवश्य ही ऐसी होंगी जो गृहस्थ जीवन तथा मातृत्व की अपेक्षा ऐसा स्वतंत्र जीवन ही स्वीकार करेंगी तथा कुछ-कुछ का मत है कि अनेक पुरुषों को ऐसी रूप ही हाट की आवस्यकता भी रहेगी। पुरुष को आवश्यकता रहेगी, इसलिए स्त्री को

अपना जीवन बेचना होगा, यह कहना तो न्यायसंगत न होगा। कोई भी सामाजिक प्राणी अपनी आवश्यकता के लिए किसी अन्य को स्वार्थ की हत्या नहीं कर सकता।"[1] महिला-लेख इसलिए स्त्री केन्द्र में रखता है और परोक्षतः हमारी सांस्कृतिक प्रश्नोन्मुखता पर प्रकाश डालता है।

सामाजिक यथार्थ का सरलीकरण और उसका प्रतिरोध

आज लेखिकाएँ सभी विषयों पर लिखती हैं। सभी परिदृश्यों में हस्तक्षेप करती हैं। जहाँ वे अपना भोग हुआ यथार्थ प्रस्तुत करती हैं वही दूसरों के प्रति भी उनकी अनुभूति उसी शिद्दत से जगती है। लेखिकाओं की सफलता इसमें है कि उन्होंने महिला जगत को अपनी दृष्टि से देखा और परखा है, अब तक पुरुष कहानीकारों ने स्त्री जीवन का एवं उनकी समस्याओं का अंकन पुरुष दृष्टि से किया था। परन्तु समकालीन कहानी लेखिकाओं ने स्त्री जगत के हर पहलु का अपनी दृष्टि से चित्रण किया है। इसीलिए उस चित्रण में स्वाभाविकता और यथार्थता आ गयी है।

समकालीन दौर भी स्त्री केन्द्रित कहानियों में बदलाव ज़रूर आया है। लेकिन वह बदलाव के लिए बदलाव नहीं है। यह बदलाव सभी प्रकार के सरलीकरणओं के विरुद्ध अपनाया गया दृष्टिकोण है। स्त्री के सौन्दर्य को लेकर कहानियों में जो उल्लेख था वह स्त्री के

---

1. महादेवी वर्मा - श्रृंखला की कड़ियाँ - चतुर्थ संस्करण, 2004 - पृ. 90

सरलीकरण के लिए था। आज सौन्दर्य पर स्वयं स्त्री विचार करती है। वह सरलीकरण का विरोध है। स्त्री लेखन के समस्त पक्षों को जिस तरह सरलीकृत किया गया था और उन्हें पुनः जिस तरह से महिमा मंडित किया गया था। उसपर आज की स्त्री केन्द्रित कहानी अपना प्रतिरोध दर्ज करती है।

समकालीन कहानियों में भारतीय स्त्री के ऐसे अनेक पहलुओं को प्रकाश में लाया गया है जो अब तक अछूते रह गये थे। ऐसे भी कई पहलू हैं जिन्हें पूर्व लिखी गयी कहानियों में तो उभारा गया था लेकिन या तो उन पह गहराई से विचार नहीं किया गया था अथवा उनके महत्व की उपेक्षा की गयी थी। इस दौर में स्त्री जीवन के इन पहलुओं को छूना और खुले रूप में प्रस्तुत करना संभव हो सका है। आज युग-परिवर्तन के साथ-साथ लोगों की विचारधारा भी बदल गयी है। जितना खुलकर हम आज सोच-विचार कर सकते हैं उस रूप में कल सोचना संभव नहीं था। इस समयगत परिवर्तन के परिणामस्वरूप आज की लेखिकाएं भारतीय स्त्री के विभिन्न अछूते पहलुओं को यथार्थ की धरातल पर प्रस्तुत कर रही हैं। जहाँ यथार्थ की सीमाओं का उल्लंघन दिखाई देता है वह यथार्थ की पारदर्शिता को उल्लेकित करने के लिए है।

आज की स्त्री कटुता भरे या ऊब भरे वैवाहिक जीवन को जीना अपराध समझती हैं। घुट-घुट कर जीते रहने से तो संबन्ध

विच्छेद कर लेना ही श्रेयस्कर है। फिर भी भारतीय स्त्री अपने जन्मजात संस्कारों के कारण कभी-कभी स्वयं इस ओर पहल नहीं कर पाती। राजीसेठ की 'अन्धे मोड़ से आगे' कहानी की नायिका अपने पति से ऊब कर मिश्रा की ओर अकृष्ट होती है, परन्तु उसे शीघ्र ही अनुभव होने लगता है कि वह एक ऊब से निकालकर दूसरी बड़ी ऊब में जा फंसी - "मिश्र के कपड़े संवारते उसके लिए रच-रच कर रसोई बनाते... अक्सर एक लंबोतड़ा कीड़ा उसे अपनी पीठ पर रेंगता, सरसराता लगता है।"[1] दाम्पत्य संबन्धों के उबाऊपन की स्थिति उनकी कहानी 'अपने दायरे' की पत्नी के लिए भी बनी हुई है - "सड़ा-गला उपेक्षित अंग बन कर जीना नहीं चाहती, दुर्गंध से घृणा है। स्वस्थ मुक्ति या अस्वस्थ अधिकार। दूसरों की शर्तों पर ही जीना हो तो मरने की अपनी शर्तें क्या बुरी हैं।"[2] वैवाहिक जीवन की ये विसंगतियों दाम्पत्य जीवन को विवश बना देती हैं और उसमें कटुता भर देती हैं। यह समस्या आज बहुत ही विकट रूप धारण कर रही है। इसके मूल में कई कारण हैं। लेखिकाओं ने इन पर विशेष रूप से विचार किया है।

---

1. राजी सेठ - अन्धे मोड़ से आगे (क.सं) - प्र.सं. .... पृ. 115
2. राजी सेठ - तीसरी हथेली (क.सं.) - अपने दायरे (कहानी) - पृ. 54

स्त्री के संघर्ष के माध्यम से अस्मिता की पहचान

समकालीन समाज में स्त्री जाति ने निरन्तर संघर्ष के द्वारा अपना यह मुकाम पाया है जिसकी वास्तव में कल्पना नहीं की जा सकती है। आज वह अपने मजबूत कदम के साथ खड़ी होकर पुरुषों के साथ हर क्षेत्र में मुकाबला कर रही है। जागरण काल से स्त्री में जो चेतना जागृत हुई वह आज साकार होती नज़र आ रही है। उसका सबसे बड़ी सफलता आर्थिक स्वतंत्रता है। अपनी प्रतिभा, परिश्रम, और कौशल के कारण ही पुरुषों के बीच वह प्रतिद्वन्द्विता में निरन्तर सफल होकर आगे बढ़ रही है। उसके लिए अब ज़िन्दगी का कोई क्षेत्र अछूता नहीं रह गया है जहाँ उसका प्रवेश संभव न हो। आज़ादी के बाद तो उसकी परंपरागत स्त्री का बिम्ब लगभग टूट गया है। अथक परिश्रम और आगे बढ़ने की ललक - लालसा से उसे जीवन में सफलताएँ मिली हैं जिनके कारण उसमें आशा-आकांक्षाओं का उदय हुआ है। लेकिन निम्न मध्यवर्ग की महिलाओं की आर्थिक स्वतंत्रता अब भी संदिग्ध है। इसलिए उन्हें संघर्ष करना पड़ता है, यह भी स्त्री जीवन का यथार्थ है। इस यथार्थ को लेखिकाओं ने अपनी कहानियों के लिए स्वकार किया है।

नमिता सिंह की 'गलत नम्बर का जूता' कहानी का नायक सुधीश इंजीनियर होते हुए भी तमाम तरह के वैध-अवैध ढ़ंग से धन

कमाने को लालायित रहता है। यहाँ तक कि अपने बॉस को प्रसन्न करने के लिए अपनी पत्नी से कहता है कि तुम लाला हरदयाल से मिलकर उसे प्रभावित करो। तुम्हें नौकरी मिल जायेगी। सुजाता नये ज़माने की शिक्षा प्राप्त स्त्री है। वह नौकरी के खातिर अपने सिद्धान्तों से समझौता करना नहीं चाहती है। यहाँ तक कि धन कमाने की इस दूषित वृत्ति ने उसे अपने पति सुधीश से भी अलग रहकर नौकरी करने के लिए विवश कर दिया है। यह स्वाभिमानी स्त्री है और वह अपने पति से स्पष्ट शब्दों में कहती हैं - "मैं नौकरी करूँगी - अपने पैरों पर खड़े होने के लिए। मैं खुद को इस लायक बनाऊंगी लेकिन अपने तरीके से तुम्हारे ऐशोआराम तुम्हारी महत्वाकांक्षा के रास्ते को पुख्ता करने के लिए नहीं।"[1] लेखिका ने सुजाता के माध्यम से स्त्री की आर्थिक स्वतंत्रता हेतु संघर्ष के साथ साथ उसके साहसी रूप को प्रस्तुत किया है।

समकालीन लेखिकाएँ 'स्त्री अस्मिता' के लिए ही प्रयत्नरत है। रमणिका गुप्ता स्त्री अस्मिता को इस प्रकार परिभाषित करती है। "आखिर स्त्री अस्मिता है क्या? दरअसल यह पुरुष के समान स्त्री का समान अधिकार, स्त्री के प्रति विवेकमूलक दृष्टिकोण तथा स्त्री द्वारा पुरुष के वर्चस्व का प्रतिरोध।"[2] लेखिकाओं ने अपनी लेखनी के

---

1. नमिता सिंह - जंगल गाथा (कं.सं) गलत नम्बर का जूता (कहानी) - पृ. 123
2. रमणिका गुप्ता - स्त्री विमर्श : कलम और कुदाल के बहाने - प्र.सं. 2004, पृ. 55

माध्यम से इस समान अधिकार को प्राप्त करने का, हर एक स्त्री में प्रतिरोध जगाने की निरन्तर कोशिश की है।

आज जितनी भी कहानियाँ अपनी रचनात्मक ऊर्जा समृद्धि से युक्त हैं वे समाज और संस्कृति के संदर्भ में प्रासंगिक होंगी। जैसे संकेतित किया गया है कि स्त्री आज केन्द्र में है विशेषकर महिला कहानीकारों की रचनाओं में। क्या यह हाशियीकृत वर्ग का उत्थान है? हाँ, एक विशेष अर्थ में यह हाशियीकरण का प्रतिरोध है। परन्तु इसमें उपेक्षिताओं की कहानी का पुनर्पाठ नहीं मिल रहा है। अपितु संस्कृति और सामाजिकता का पुनर्पाठ भी मिल रहा है। महिला कहानीकारों ने स्त्री के जीवन को संस्कृतिक पाठ के रूप में अनुभव किया और उसे सामाजिक पाठ के रूप में विश्लेषित किया। महिला कहानीकारों की स्त्री केन्द्रित कहानियों की यही सबसे महत्वपूर्व प्रासंगिकता है। अतः ये कहानियाँ निरंतर असंख्य पाठ-पाठांतरों की संभावनाओं का सृजन कर रही हैं।

उपसंहार

उपसंहार

महिला लेखन साहित्य का एक व्यापक प्रासंगिक क्षेत्र है। उसमें साहित्य की सभी विधाओं में महिलाओं द्वारा रची गयी रचनाओं के अलावा महिलाओं की बहुमुखी समस्याओं पर केन्द्रित अन्य असंख्य रचनाएँ और महिला केन्द्रित आयोजनों से संबन्धित चर्चाएँ भी आ सकती हैं। साहित्य एवं साहित्येतर रचनाएँ महिला लेखन की मलभूत सामग्री है। ये सामग्रियाँ एक-दूसरे की पूरक हैं। महिला-लेखन को साहित्य तक सीमित रखते समय भी वास्तविक विश्लेषण के लिए हमें साहित्येतर सामग्रियों का अवलंब लेना पड़ता है। इस तरह महिला लेखन महिला केन्द्रित कार्य-कलापों का प्रमुख पक्ष हो जाता है।

सांस्कृतिक संवाद के रूप में यद्यपि कविता, कहानी, उपन्यास आदि के बीच में कोई बुनियादी अन्तर नहीं है फिर भी अध्ययन को गहन बनाने के लिए हमें विधा विशेष तक सीमित होना पड़ता है।

जब हम कहानी को विधा विशेष के रूप में लेते हैं तो कहानी के विभिन्न युगों में तथा विभिन्न प्रवृत्तियों के बीचों-बीच स्त्री-मानस को स्पष्ट कर देना कठिन नहीं है। अतः हिन्दी महिला लेखन के प्रकरण

में हिन्दी कथायात्रा को देखना आवश्यक हो जाता है। कहानी के शुरुआती दौर में प्रमुख पुरुष कथाकारों के साथ साथ कितनी महिला कहानीकारों ने सृजनात्मकता का परिचय दिया और आगे आनेवाले युगों में भी यह सृजनात्मक नैरंतर्य किस तरह अटूट रहा तथा आगे के युगों में महिला लेखन में क्या-क्या उपलब्धियाँ पायी जाती हैं आदि का सर्वेक्षण महिला लेखन के विश्लेषण के प्रमुख पक्ष होते हैं।

स्त्री द्वारा रचित रचना में उपलब्ध स्त्री-मानस पुरुष द्वारा रचित स्त्री-मानस से भिन्न है। इसमें अनुभव की प्रामाणिकतावाली बात उतनी महत्वपूर्ण नहीं है, जितनी स्त्री, स्त्री को किस प्रकार देखती है। यदि एक स्त्री, स्त्री को पारंपरिक ढ़ंग से देखती है और रूढ़ीवादी स्थिति में अंकित करती है तो उसे हम पारंपरिक रचनात्मकता में ही श्रेणीबद्ध कर सकते हैं। उसमें न कोई मौलिकता है और न कोई नवीनता। अतः हिन्दी कहानी में से उभरते स्त्री-बिंब को विशेषकर स्त्री रचना में उपलब्ध स्त्री-बिंब को देखना अपने आप में एक अनन्य अनुभव है। महिला कहानीकारों मे प्राप्त स्त्री-बिंबों में कहीं-कहीं पारंपरिकता की सीमाएँ दृष्टिगत होती हैं, कहीं-कहीं जाग्रत अवस्था की सक्रियता भी मिलती है।

रूढ़ियों से बंधा हुआ समाज, जिसमें स्त्री सामान्य ही समझी जाती रही है, गतिशील होता नहीं है। इस विचारधारा को पुरुष एवं स्त्री रचनाकारों ने स्वीकार किया है। आधुनिक युग में ही इसमें थोड़ा

परिवर्तन हुआ। स्त्री के अस्तित्व को मात्र उसीके संदर्भ में देखने की प्रवृत्ति विकसित हुई। उसका साहित्य में भी असर पड़ने लगा। रचनाओं में स्त्रियों की परिकल्पनाएँ बलवती होती गयीं। एक तरह की स्त्री-स्वत्व की तलाश शुरू हो गयी।

समकालीन महिला कहानीकारों की कहानियों में अभिव्यक्त स्त्री अपने व्यक्तित्व के प्रति नितांत सजग है। वह स्वयं अपनी पहचान बनाने के लिए प्रयत्नशील है। स्त्री-मन की सूक्ष्म अभिव्यक्ति इस दौर की कहानियों में व्यापक रूप में हुई है। पुरुष सत्ता के एकाधिकार की चुनौती समकालीन कहानियों में बुलंद मिलती है। इस कारण से अधिकार, पूँजीवाद, उपभोक्तावाद, उपनिवेशवाद जैसी विकराल स्थितियों से भी कहानियों को जोड़ा जा सकता है। इसका यह मतलब नहीं है कि इन कहानीकारों ने मात्र इन्हीं विषयों को अपनी कहानी के लिए चुना है। कहने का तात्पर्य यही है कि उनकी विषयवस्तु इन कुछ विकराल स्थितियों की तरफ गहन-गंभीर दिखाई दे रही है। वस्तुतः यह उन कहानियों की रचनात्मक संभावनाओं का प्रतिफलन है।

हिन्दी में स्त्री लेखन को लेकर दो भिन्न-भिन्न विचारधाराएँ परिलक्षित होती हैं। आलोचकों का एक गण महिला लेखन से पूर्णतः असन्तुष्ट है तो आलोचकों का दूसरा वर्ग स्त्री-लेखन, उसके भविष्य, उसकी संभावना और वैचारिक गंभीरता को लेकर आस्थावान हैं।

पुरुषप्रधान समाज में सदियों से विद्यमान दोहरी मानसिकता के जाल में फँसी स्त्री की मूक अन्तर्व्यथा को महिला कहानीकारों ने शब्द दिये हैं। सहनशीलता का सकारात्मक पक्ष है जिसे हम प्रायः भारतीय स्त्री की विशेषता कहकर महिमामंड़ित करते हैं। सहनशीलता के नकारात्मक पक्ष की उतनी स्वीकृति समाज में नहीं है। उसका नाजायज फायदा ही उठाया जाता है। सहनशील स्त्री में इसलिए आरोपित रूढ़ियों का आभास हम अनुभव कर पाते हैं। स्त्री का अकेला होना सामाजिक रूढ़ियों की क्षमता से संबन्धित है। परिवार और समाज में आखिर कोई यदि आकेली हो जाती है तो वह स्त्री है। स्त्री का साथ अक्सर स्त्री वर्ग भी नहीं देता है। यही सामाजिक बन्धनों की कर्कशता है। इन स्थितियों को लेखिकाओं ने भिन्न-भिन्न कहानियों के माध्यम से दर्शाया है।

समकालीन महिला कहानीकारों की कहानियों ने स्त्री को प्रतिकृत होती व्यक्ति के रूप में इसलिए दिखाया है कि वह एक बहुत बड़े सच की गवाह है। वह गवाह जो अपना बयान देना पसन्द करती है। वह गवाह जो जवाबदेही से कतराना नहीं चाहती। ऐसे में इन कहानियों के स्त्री पात्रों की प्रतिक्रियाओं को व्यक्तिपात्रों के निजी मामलों तक सीमित करके देखना नहीं चाहिए बल्कि उन्हें इतिहास के बदलते सन्दर्भ की संवेदनात्मक स्थिति के रूप में देखना है।

हिन्दी का महिला-लेखन समकालीन दौर में अधिकाधिक विकसित और सारगर्भित दीखता है। उसके तीन कारण हैं। पहला है, जीवन-यथार्थ की पहचान की विशिष्टता, दूसरा है महिला लेखन की अपूर्व रचनात्मकता और तीसरा है गहन-गंभीर इतिहासबोध। एक ज़माने में जो महिला लेखन हाशिए पर था वह समकालीन दौर में केन्द्र में आया है। यह हमारी पहचान का आन्तरिक विस्तार है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

कहानी संकलन

1. अन्धे मोड़ से आगे — राजी सेठ
राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड
नई दिल्ली-110002
प्र. सं. - 1979

2. आदम और हव्वा — मेहरुन्निसा परवेज़
नेशनल पब्लिशिंह हाउस
दिल्ली
प्र. सं. 1972

3. उसका घर — मेहरुन्निसा परवेज़
लोकभारती प्रकाशन
इलाहाबाद
प्र.सं. 1994

4. एक प्लेट सैलाब — मन्नू भण्डारी
अक्षर प्रकाशन
दिल्ली
प्र.सं. 1968

5. ग्लेशियार से — मृदुला गर्ग
प्रभात प्रकाशन
दिल्ली
प्र.सं. 1980

6.	चर्चित महिला कथाकारों की कहानियाँ	सं. दिनेश द्विवेदी प्रवीण प्रकाशन दिल्ली प्र.सं. 1992
7.	टुकड़ा-टुकड़ा आदमी	मृदुला गर्ग नेशनल पब्लिशिंह हाऊस दिल्ली प्र.सं. 1978
8.	ढ़हता कुतुबमीनार	मेहरुन्निसा परवेज़ विद्या विहार दिल्ली प्र.सं. 1993
9.	ज़मीन अपनी-अपनी	सं. मंगला रामचन्द्रन स्वाति तिवारी दिशा प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 2001
10.	ज़िन्दगी और गुलाब के फूल	उषा प्रियंवदा भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन दिल्ली प्र.सं. 1971
11.	धुएँ की ईमानदारी	कुसुम अंसल नेशनल पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली-110002 प्र.सं. 1999

12. पते बदलते हैं	कुसुम अंसल अभिव्यंजना प्रकाशन नई दिल्ली-110026 प्र. सं. 1983
13. फिर बसन्त आया	उषा प्रियंवदा राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली प्र. सं. 1984
14. दुनिया का कायदा	मृदुला गर्ग इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन दिल्ली-110051 प्र. सं. 1983
15. बीतते हुए	मधु कांकरिया राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. नई दिल्ली-110002 प्र. सं. 2004
16. बेघर	ममता कालिया रचना प्रकाशन दिल्ली प्र. सं. 1976
17. पत्थर गली	नासिरा शर्मा राजकमल प्रकाशन दिल्ली प्र. सं. 1986

18.	ममता कालिया की कहानियाँ (खंड-1)	ममता कालिया वाणी प्रकाशन नई दिल्ली प्र. सं. 2005
19.	महिला कथाकारों की उन्नीस श्रेष्ठ कहानियाँ	सं. मीना अग्रवाल स्टार बुक सेन्टर दिल्ली प्र. सं. 1980
20.	मेरी प्रिय कहानियाँ	उषा प्रियंवदा राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली प्र. सं. 1974
21.	मेरी प्रिय कहानियाँ	मन्नू भण्डारी राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली प्र. सं. 1992
22.	मैं हार गयी	मन्नू भण्डारी अक्षर प्रकाशन दिल्ली प्र. सं. 1957
23.	यही सच है	मन्नू भण्डारी अक्षर प्रकाशन दिल्ली प्र. सं. 1966

24. यात्रामुक्त	राजीसेठ नेशनल पब्लिशिंग हाऊस दरियागंज नई दिल्ली प्र. सं. 1987
25. यह कहानी नही	राजीसेठ नेशनल पब्लिशिंह हाऊस दिल्ली प्र. सं. 1986
26. सोने का बेसर	मेहरुन्निसा परवेज़ सत्साहित्य प्रकाशन चावड़ी बाज़ार नई दिल्ली-6 प्र. सं. 1991
27. सीट नंबर छह	ममला कालिया लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद प्र. सं. 1978
28. श्रेष्ठ कहानियाँ	मन्नु भण्ड़ारी अक्षर प्रकाशन, दिल्ली प्र. सं. 1969
29. रंगमंच	ऊर्मिला शिरीष पारुल प्रकाशन, दिल्ली प्र. सं. 2004

30. लाक्षागृह	चित्रा मुद्गल पराग प्रकाशन, दिल्ली प्र. सं. 1982

आलोचनात्मक ग्रन्थ

1. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास	बच्चन सिंह लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद प्र. सं. 1992
2. आधुनिक हिन्दी साहित्य	ब्रह्मस्वरूप शर्मा अनु प्रकाशन दिल्ली प्र. सं. 1996
3. उठो अन्नपूर्णा साथ चलें	उषा महाजन हिमाचल पुस्तक भण्डार दिल्ली प्र. सं. 1998
4. उपनिवेश में स्त्री	प्रभा खेतान राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली प्र.सं. 2002
5. एक कहानी यह भी	मन्नू भण्डारी राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली प्र. सं. 2007

6.	एक दुनिया समानान्तर	सं. राजेन्द्र यादव अक्षर प्रकाशन नई दिल्ली प्र. सं. 1966
7.	औरत के लिए औरत	नासिरा शर्मा सामयिक प्रकाशन नई दिल्ली-110002 प्र. सं. 2003
8.	औरत : उत्तरकथा	सं. राजेन्द्र यादव / अर्चना वर्मा राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली प्र. सं. 2002
9.	कथा साहित्य के सौ बरस	सं. विभूति नारायण राय शिल्पायन प्रकाशन दिल्ली प्र. सं. 2001
10.	कहानी : नयी कहानी	नामवर सिंह लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद प्र. सं. 1996
11.	कहानी और कहानीकार	सुमन कुमार 'सुमन' सूर्य प्रकाशन, दिल्ली प्र. सं. 1989

12.	दुर्ग द्वार पर दस्तक	कात्यायनी परिकल्पना प्रकाशन लखनऊ प्र. सं. 1997
13.	नयी कहानी : सन्दर्भ और प्रकृति	देवीशंकर अवस्थी अक्षर प्रकाशन दिल्ली प्र. सं. 1966
14.	नई कहानी : कथ्य और शिल्प	डॉ. सतबख्श सिंह अभिनव भारती प्रकाशन इलाहाबाद प्र. सं. 1973
15.	नई कहानी की भूमिका	कमलेश्वर अक्षर प्रकाशन दिल्ली प्र.सं. 1966
16.	परिधि पर स्त्री	मृणाल पाण्डे राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली प्र. सं. 1996
17.	बाज़ार के बीच बाज़ार के खिलाफ	प्रभा खेतान वाणी प्रकाशन नई दिल्ली प्र. सं. 2002

18.	मात्र देह नहीं है औरत	मृदुला सिन्हा सामयिक प्रकाशन नई दिल्ली प्र. सं. 2007
19.	समकालीन कहानी समान्तर कहानी	डॉ. विनय मैकमिलन एण्ड कम्पनि दिल्ली प्र. सं. 1977
20.	स्त्री उपेक्षिता	अनु. प्रभा खेतान सरस्वति विहार शाहदरा दू. सं. 1991
21.	स्त्री अस्मिता साहित्य और विचारधारा	सं. जगदीश्वर चतुर्वेदी, सुधासिंह आनन्द प्रकाशन कोलकत्ता प्र. सं. 2004
22.	स्त्रीवादी साहित्य विमर्श	जगदीश्वर चतुर्वेदी अनामिका पब्लिशेर्स एण्ड डिस्ट्रिब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड
23.	स्त्री विमर्श-कलम और कुदाल के बहाने	रमणिका गुप्ता शिल्पायन दिल्ली प्र. सं. 2004

24.	स्त्री सरोकार	आशारानी व्होरा नेशनल पब्लिशिंह हाउस दिल्ली प्र. सं. 1984
25.	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी कथ्य एवं शिल्प	शिवशंकर पाण्डेय आलेख प्रकाशन नई दिल्ली प्र. सं. 1978
26.	समकालीन कहानी : युगबोध का सन्दर्भ	पुष्पपाल सिंह नेशनल पब्लिशिंङ हाउस दिल्ली प्र. सं. 1996
27.	साहित्य का नया विवेक	सं. डॉ. रमेश गौतम / डॉ. पूरनचन्द्र टण्डन अभिव्यक्ति प्रकाशन दिल्ली-110032 प्र. सं. 2002
28.	स्त्री संघर्ष का इतिहास	राधाकुमार वाणी प्रकाशन नई दिल्ली प्र. सं. 2002
29.	स्त्री चिन्तन की चुनौतियाँ	रेखा कस्तवार राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली प्र. सं. 2006

30. हिन्दी कहानी एक अन्तरंग पहचान — रामदरश मिश्र, नीलाप प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. 1968

31. हिन्दी उपन्यास के सौ वर्ष — सं. रामदरश मिश्र, गिरनर प्रकाशन, पिलाजी गंज, महेसाना, प्र. सं. 1984

32. हिन्दी कहानी उद्‌भव और विकास — डॉ. सुरेश सिन्हा, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. 1966

33. हिन्दी कथा साहित्य के विकास में महिलाओं का योग — ऊर्मिला गुप्ता, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 1966

34. रचना के विकल्प — ए. अरविन्दाक्षन, शिल्पायन, शाहदरा, दिल्ली-110032, प्र. सं. 2006

35. श्रृंखला की कड़ियाँ — महादेवी वर्मा, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, च. सं. 2004

पत्रिकाएँ

1.	अमर उजाला	- दिसंबर	1999
2.	आलोचना	- अक्तूबर-दिसंबर	1962
3.	आलोचना	- जुलाई-सितंबर	1981
4.	आजकल	- मई	1997
5.	आजकल	- मार्च	2008
6.	माध्यम	- अप्रैल-जून	2004
7.	मधुमती	- जून	1998
8.	मधुमती	- जनवरी	2007
9.	वाङ्मय (नारी विशेषांक)	- जुलाई-दिसंबर	2007
10.	साहित्य वार्षिकी	-	1996
11.	साक्षात्कार	- अक्तूबर	1992
12.	साक्षात्कार	- दिसंबर	2008
13.	साहित्य अमृत	- जनवरी	2003
14.	हंस	- जनवरी-फरवरी	2000

❖❖❖